एक ईश्वर की धारणा

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

विषय सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।'

दो शब्द

जीवन की कोई सच्चाई नहीं, यह कैसे कहा जा सकता है! जीवन को टटोलकर देखिए, जीवन तो है, जो कभी सुख देता है, कभी पीड़ा और कभी कुछ सोचने पर बाध्य करता है। जब जीवन है और हममें एहसास और उत्कृष्ट चेतना मौजूद है, फिर यह कैसे हो सकता है कि जीवन की कोई सार्थकता और सच्चाई न हो!

ईश्वर जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई है। ईश्वर को अस्वीकार करने से जीवन की सार्थकता ही नष्ट हो जाती है और वह सत्वहीन होकर रह जाता है। ईश्वर के प्रति अपनी धारणा को विशुद्ध एवं सजीव बनाना हमारा कर्तव्य है। अल्पज्ञता के कारण आज ईश्वर का नाम अरुचिकर और रूढ़िवादिता का दूसरा रूप बनकर रह गया है। यह स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। ईश्वर की धारणा को हृदय से खुरच देने के बाद मानव को आत्म-शान्ति और सफलता नहीं मिल सकती। इसके साथ ही मात्र ईश्वर को स्वीकार कर लेने से भी लक्ष्य नहीं प्राप्त हो सकता। इसके लिए एक यथार्थ ईश्वर पर दृढ़ आस्था और विश्वास और जीवन को ईश्वर की इच्छानुसार ढाल लेना अनिवार्य होगा।

आज संसार में ईश्वर के अस्तित्व और उसके स्वरूप के विषय में विभिन्न धारणाएँ पाई जाती हैं। कोई ईश्वर के अनेक होने पर विश्वास करता है तो कोई सिर्फ़ एक होने पर।

ईश्वर का स्वरूप क्या है? उसमें अपना विश्वास स्थापित करने का अभिप्राय क्या है? व्यावहारिक दृष्टि से ईश्वर से हमारा सम्बन्ध क्या है?

आदि प्रश्नों को लेकर प्रस्तुत पुस्तक में विचार किया गया है और इस सिलसिले में विशेष रूप से इस्लामी दृष्टिकोण को सामने लाने का प्रयास किया गया है। हमें आशा है कि हमारे पाठक इससे पूरा लाभ उठाएँगे।

यह पुस्तक पहले भी प्रकाशित होती रही है और आप पाठकों में अतुल लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है। पुस्तक की उपयोगिता और महत्व को देखते हुए इसका पुनरीक्षण एवं संशोधन किया गया है। इसमें बहुत से उपयोगी एवं महत्वपूर्ण तथ्य बढ़ाए गए हैं और कुछ अनुपयोगी तथ्यों को हटाया भी गया है। इस अति महत्वपूर्ण कार्य की ज़िम्मेदारी बिरादरम एस॰ कौसर लईक़ साहब के सुपुर्द की गई थी, जिसको उन्होंने पूरी ख़ूबी के साथ निभाया है। हम एस॰ कौसर लईक़ साहब के प्रति आभार प्रकट करते हैं और दुआ करते हैं कि अल्लाह उनको इसका अच्छा बदला दे।

निस्सन्देह कोई भी कार्य ईश्वर की कृपा और करुणा के बिना कभी भी पूरा नहीं होता। इस पुस्तक के लेखन आदि कार्य में भी ईश्वर की ही विशेष कृपा रही है कि यह भारी कार्य पूर्ण हो सका। हम ईश्वर के आगे नतमस्तक होकर प्रार्थना करते हैं कि यह पुस्तक जिस ध्येय से लिखी गई है, इसे उस लक्ष्य तक पहुँचाए।

भवदीय

—मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

ईश्वरीय सत्ता के प्रमाण

हमारी चेतना-पट पर दुनिया की चीज़ें कुछ इस प्रकार छाई रहती हैं कि हमारा स्वयं अपनी आत्मा की ओर भी ध्यान नहीं जाता, फिर ईश्वर को जानने का कोई प्रयास हम क्या करेंगे! तालाब का पानी यदि गहरी काई से ढका हो तो उस पानी को कौन देख सकता है! फिर तो काई-ही-काई दिखाई देगी। इसी प्रकार अज्ञानता का मेघ मानव-मस्तिष्क में छाए होने के कारण ईश्वर का अस्तित्व अज्ञानियों को प्रतीत नहीं होता, यद्यपि जगत् ईश्वरीय-आभा से परिपूर्ण है। उसकी निशानियाँ कहाँ नहीं हैं! फिर भी होंठों पर उसके बारे में प्रश्न के शब्द आ जाते हैं। हमारी चेतना उसका दर्पण है फिर भी वह दूर लगता है, इतना दूर कि उसके बारे में शंकाएँ उत्पन्न होने लगती हैं। कण-कण उसका साक्षी है फिर भी वह निगाहों से दूर लगता है, शायद इसलिए कि हमने उसे अपने मन से दूर कर रखा है।

कहने को तो ईश्वर को जानने की लालसा सभी को है, किन्तु बात यह नहीं है। हर एक ने अपने को कहीं-न-कहीं टिका रखा है और उसी पर राज़ी है, फिर ईश्वर अपने समीप होने का किसी को क्यों अनुभव होने दे! ईश्वर को जानने के लिए उत्कट आकाँक्षा अपेक्षित है। उसे जानना है तो अपने समूचे अस्तित्व के साथ उसे जानने का साहस जुटाइए, फिर देखिए किस प्रकार सत्य का उद्घाटन होता है।

ईश्वर की सत्ता

प्रकृति में उपयोगिता का नियम

दुनिया में आदमी अपने चारों ओर तरह-तरह की लीलाएँ घटित होते देखता है। स्वयं उसका अपना अस्तित्व भी किसी आश्चर्य से कम नहीं है। जगत् और ब्रह्माण्ड में मानव को समस्त वस्तुएँ एक व्यवस्थित रूप में दिखाई देती हैं। प्रातः काल सूर्य का निकलना और सायंकाल उसका निगाहों से ओझल हो जाना, अपने-आपमें एक अद्भुत सौंदर्य रखता है। रात में आकाश का तारों से सुशोभित होना भी एक अतुल आकर्षण और सौन्दर्य का विषय प्रतीत होता है। वन-उपवन के फूल हों या जंगल के पशु-पक्षी, प्रकृति ने किसे सुन्दरता नहीं दी! साराँश यह कि प्रकृति की छाया जहाँ और जिस चीज़ पर भी पड़ती है वह सुन्दरता का प्रतीक बन जाती है और मन एवं मस्तिष्क से उसका सीधा सम्पर्क स्थापित हो जाता है।

सुन्दरता एवं मोहकता के साथ ही जगत् में हमें अपार बल और शक्ति के भी दर्शन होते हैं। मन्द और शीतल वायु के साथ जगत् में तूफ़ानी हवाएँ भी चलती हैं। पंछियों की मीठी बोलियों के साथ हमें यहाँ बिजली की कड़क और बादलों की गरज भी सुनाई दे जाती है। उषा की सुकुमारता के साथ समुद्र की भयंकर लहरें भी हैं। एक ओर फूलों की कोमलता है तो दूसरी ओर शुष्क और कठोर पर्वत मालाएँ भी हैं। जगत् क्या है? कोमलता और कठोरता तथा शक्ति और सौन्दर्य का एक अद्भुत निर्वाह।[1]

फिर प्रकृति की सारी शक्ति और सुन्दरता केवल निगाहों का ही विषय नहीं है, इस पर हमारी दूसरी आवश्यकताएँ भी निर्भर करती हैं। हमारे जीवन की सुरक्षा का कार्य-भार भी यही सम्भाले हुए है। देखने में प्रकृति अबोल है, किन्तु इसका कार्य अत्यन्त दायित्वपूर्ण और गम्भीर है। हम प्रकृति के हाथ का मात्र ऐसा खिलौना तो नहीं हैं, जो केवल मनोरंजन का साधन हुआ

1. 'उसने (ईश्वर ने) जो चीज़ भी बनाई ख़ूब बनाई।' —क़ुरआन

करता है। प्रकृति और प्राकृतिक शक्तियों को भी मात्र मनोरंजन-उपकरण नहीं समझा जा सकता।

मानव प्रकृति की मूक भाषा को समझने की कोशिश कम करता है। वह प्रकृति के संकेतों की उपेक्षा ही करता रहता है, विशेषतः सूक्ष्म संकेतों की। मानव प्रकृति से जितना लाभ उठाता है, प्रकृति कहीं उससे भी अधिक देने को तैयार है। वह हमारी भौतिक आवश्यकताओं की आपूर्ति तो करती ही है, हमारी अभौतिक आवश्यकताओं के लिए भी उसके पास बहुत कुछ है। यह मानव का अपना निश्चय है कि वह प्रकृति से क्या लेता है और क्या छोड़ता है। जल में आक्सीजन और हाइड्रोजन किस अनुपात से सम्मिलित हैं, केवल इतना-भर जान लेने या इसी प्रकार की कुछ अन्य बातों के ज्ञात होने से प्रकृति-रहस्य का उद्घाटन नहीं हो जाता। प्राकृतिक वस्तुओं में संरचना सम्बन्धी जो कुशलता और उसमें निहित उपयोगिता (Utility) और उद्देश्य का जो अभौतिक अंश पाया जाता है आख़िर उसका कारण क्या है? अभौतिक तत्व का भौतिक स्तर पर विश्लेषण करने की कोशिश तो अवैज्ञानिक बात होगी।

इस प्रकार जगत् में हमें इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है कि प्रकृति का अपना उद्गम एवं स्रोत कहीं और है। प्रकृति-संचालन का कार्य किसी ऐसी सत्ता के हाथ में है जिसका सारे जगत् पर अधिकार और नियन्त्रण (Hold and Control) है। यदि हम ऐसा नहीं मानते तो इसका अर्थ यह है कि हम वस्तुओं में परिलक्षित एक विशेष तत्व 'उपयोगिता' के लिए कोई वैज्ञानिक आधार जुटाना नहीं चाहते। स्पष्ट है कि यह स्वयं एक अवैज्ञानिक नीति होगी जिसका समर्थक कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति नहीं हो सकता।

प्रकृति में योजना के चिह्न

प्रकृति में योजना के चिह्न सर्वत्र पाए जाते हैं। इसे आप छोटी-से-छोटी वस्तु से लेकर बड़ी-से-बड़ी वस्तुओं और घटनाओं तथा परिवर्तनों तक में देख सकते हैं। जगत् की प्रत्येक वस्तु उद्देश्यपूर्ण दिखाई देती है। और यह नियम इतना व्यापक होता गया है कि सम्पूर्ण जगत् अपने एक अन्तिम लक्ष्य

की ओर उन्मुख दिखाई देता है। इसी तथ्य की ओर क़ुरआन संकेत करते हुए कहता है–

"और जो कुछ आकाशों में है और जो कुछ धरती में है, सबको अपनी ओर से उसने (ईश्वर ने) तुम्हारे लिए कार्यरत कर रखा है। निश्चय ही इसमें बड़ी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो सोच-विचार करनेवाले हैं।" (क़ुरआन, सूरा-45 जासिया, आयत-13)

"निस्सन्देह रात और दिन के उलट-फेर में और जो कुछ ईश्वर ने आकाशों और धरती में पैदा किया उसमें डर रखनेवालों के लिए निशानियाँ हैं।" (क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, आयत-6)

आप विचार करें! मानव को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए जिन चीज़ों की आवश्यकता है, वे सभी चीज़ें दुनिया में मौजूद हैं। हमारे शरीर में फेफड़ा यूँ ही निरर्थक नहीं पाया जाता, बल्कि उसका अपना विशेष प्रयोजन है। उसी के द्वारा हम साँस लेते हैं जिससे शरीर के रक्त को आक्सीजन मिल पाता है और वह शुद्ध होकर अपना कार्य करता है। फेफड़े के द्वारा अन्दर की अशुद्ध वायु हम बाहर निकालते हैं। इस प्रकार यह फेफड़ा दुहरा कार्य करता है। यदि शरीर के बाहर वायु न होती तो फेफड़े का कोई उपयोग न होता। वायु केवल हमारे शरीर को अन्दर से शुद्ध ही नहीं करती अपितु इसके अन्य महत्वपूर्ण कार्य भी हैं। यदि शरीर पर वायु का विशेष दबाव न हो तो हमारे शरीर की व्यवस्था बिगड़कर रह जाए, फिर न तो हम अपने शरीर को सन्तुलित रख सकें और न हमारी रगों में सुचारु रूप से रक्त का संचार हो सके। यही वायु है जो बादलों को उड़ाकर विभिन्न स्थानों पर ले जाती है जिससे उन स्थानों पर वर्षा होती है और वहाँ की भूमि कृषि आदि के योग्य बन पाती है।

हाथ, पैर, आँख, कान और शरीर के दूसरे अंग बच्चों को माँ के पेट में ही मिल जाते हैं, हालाँकि माँ के पेट में न तो बच्चे को चलना-फिरना होता है और न उसे वहाँ देखने-सुनने, सूँघने, खाने-पीने इत्यादि की आवश्यकता होती है। बच्चे को हाथ-पैर, आँख आदि की आवश्यकता तो उस समय होती है जब वह धरती पर अपने क़दम रखता है। यह पूर्व व्यवस्था क्या उद्देश्य-

पूर्ति के नियम को व्यक्त नहीं करती!

आप आँख पर विचार करें! एक ओर हमारी आँखें हैं जिनके द्वारा संसार की चीज़ों का देखना हमारे लिए सम्भव हुआ है, दूसरी ओर संसार की नाना प्रकार की चीज़ें हैं, जिनके अभाव से हमारी आँख निरुद्देश्य होती; इसलिए कि जब देखने को कोई वस्तु ही न होती तो फिर आँखों का उपयोग ही क्या रह जाता! इस प्रकार आँख और संसार की वस्तुओं में गहरा सम्बन्ध और सम्पर्क लक्षित होता है। फिर आँख की संरचना और बनावट ऐसी है और उसमें उन सभी बातों की ऐसी रिआयत रखी गई है जिनके कारण आँख देखने का कार्य सुचारु रूप से कर सके। इसके अतिरिक्त आँख की देखने की शक्ति की एक सीमा है। हम अपनी सादा आँख से किसी के चेहरे को तो भली-भाँति देखते हैं—चेहरे की सुन्दरता हमारी रुचि और आनन्द का विषय भी है—किन्तु सोचिए यदि हमारी आँख इतनी तेज़ होती कि वह केवल चेहरे की ऊपरी खाल को ही नहीं, बल्कि चेहरे के एक-एक रोम और रोम-कूपों को भी देखती बल्कि वह इसके साथ भीतर माँस, रक्त, अस्थियों आदि को देखने में भी समर्थ होती तो यह देखना कितना अप्रिय और वीभत्सता का विषय बन जाता!

इस प्रकार हम पाते हैं कि प्रकृति में हमारी सामान्य आवश्यकताओं का ही नहीं, हमारे सौन्दर्य-बोध तक की उपेक्षा नहीं की गई है। क्या यह इस बात का खुला प्रमाण नहीं है कि प्रकृति में उपयोगिता और उद्देश्य-पूर्ति की पूर्ण व्यवस्था पाई जाती है! विकासवाद के समर्थक यहाँ यह कह सकते हैं कि आँख ने अत्यन्त आरम्भिक स्थिति से वर्तमान स्थिति तक उन्नति की है और यह उन्नति प्राकृतिक कारणों के अन्तर्गत हुई है, न यह कि किसी चेतन-सत्ता ने विशेष उद्देश्य से इसे यह पूर्ण रूप दिया है। किन्तु यदि सोच-विचार से काम लिया जाए तो विकासवादियों के इस तर्क की सारहीनता को आसानी से समझा जा सकता है। कारण यह है कि यदि हम उद्विकास (Evolution) की धारणा को स्वीकार कर भी लें, फिर भी यह प्रश्न तो अपनी जगह शेष ही रहता है कि विकास सम्बन्धी क्रिया में मूल्य (Value) के आविर्भाव और उच्चतम प्राणियों की ओर अग्रसर होने की अभिरुचि कहाँ

से और कैसे आई?

जगत् में अभिव्यक्त होनेवाले चातुर्य और प्रयोजन को दृष्टि में रखते हुए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हक्सले ने लिखा है–

"यह बिलकुल सच है कि विकासवाद का सिद्धान्त सृष्टि-सोद्देश्यवाद (Teleology) की छोटी-बड़ी सभी बातों का पूर्ण विरोधी है। ...... यन्त्रवाद (Mechanism) का अनुगामी जितना अधिक स्वतन्त्रता के साथ विचार करता है उतना ही दृढ़ता के साथ वह प्रारम्भिक परमाणुओं के गठन को स्वीकार करता है, जगत् के सारे ही दृश्य (Phenomenon) जिसके परिणाम (The consequences) हैं और उतना ही अधिक वह सृष्टि-सोद्देश्यवाद की कृपा का पात्र बन जाता है; क्योंकि वह यह सिद्ध करने में समर्थ नहीं होता कि इन प्रारम्भिक परमाणुओं के संगठन का प्रयोजन जागतिक दृश्यों को विकसित करना नहीं है।" (The Academy, Oct. 1863)

प्रकृति में कार्यान्वित सहयोग का नियम

फिर हम देखते हैं कि ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुओं और सारी शक्तियों में पारस्परिक सहयोग पाया जाता है; चाहे वे देखने में परस्पर विरोधी ही क्यों न प्रतीत होती हों। वे परस्पर एक-दूसरे की विरोधी कदापि नहीं हैं। उदाहरणार्थ भूमि में डाले हुए बीज के अँकुरित होने और उसके फल-फूल लाने में जगत् की सारी ही शक्तियाँ अपना सहयोग देती हैं। धरती यदि उसे अपने अन्दर जड़ें जमाने की अनुमति प्रदान करती है तो सूर्य अपने ताप और प्रकाश से उसकी बढ़ौत्तरी में मदद करता है। जल और वायु अलग उसे अपनी सेवा प्रदान करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इनमें परस्पर सहयोग पाया जाता है, असहयोग का नियम इनमें काम करता दिखाई नहीं देता।

प्रकृति में होनेवाले परिवर्तन भी निरुद्देश्य नहीं। रात और दिन का एक-दूसरे के पीछे आना-जाना निरुद्देश्य नहीं है, क्योंकि धरती में पाई जानेवाली वनस्पतियों, जीव-जन्तुओं तथा मानवों की कितनी ही आवश्यकताएँ इसपर निर्भर करती हैं।

धरती अपनी धुरी पर 1000 मील प्रति घण्टा की चाल से लट्टू की तरह घूम रही है। यदि उसकी यह गति 100 मील प्रति घण्टा होती तो हमारे दिन और रात आज से दस गुना बड़े होते। इसका परिणाम यह होता कि इतने लम्बे दिन की तपन से धरती की हरियाली ग़ायब होकर रह जाती और यदि कुछ शेष भी रहती तो दीर्घ रात की ठण्डक उसे भी विनष्ट कर देती।

सूर्य हमारी धरती से अत्यन्त उचित दूरी पर अवस्थित रहता है। उसका तापमान अपनी सतह पर 12000 डिग्री फारेनहाइट है। उचित दूरी पर होने के कारण हमें उससे आवश्यकतानुसार ही गर्मी मिलती है। यदि सूर्य की गर्मी दुगनी होती तो उसकी गर्मी हम सहन न कर सकते और यदि गर्मी की यह मात्रा आधी हो जाए तो सर्दी से हम जमकर रह जाएँ।

यदि चन्द्रमा अपनी वर्तमान दूरी की अपेक्षा हमसे 50 हज़ार मील और परे होता तो समुद्रों में ज्वार-भाटा की ऐसी लहरें उठा करतीं कि सम्पूर्ण भू-मण्डल दिन में दो बार जल में डूब जाया करता।

धरती के वाह्य-तल यदि वर्तमान मोटाई की अपेक्षा केवल 10 फ़ीट और अधिक मोटा होता तो धरती से आक्सीजन गैस समाप्त हो जाती और कोई जीवधारी जीवित न रह सकता।

यदि यह वायुमण्डल जो हमारी पृथ्वी को चारों ओर से घेरे रहता है कुछ और पतला होता तो टूटनेवाले तारे आकर सीधे धरती से टकराते और उल्कापात के कारण धरती में हर ओर विनाशकारी अग्निकाण्ड ही दिखाई देता। टूटे हुए तारे हज़ारों की संख्या में प्रतिदिन वायुमण्डल में जलकर रह जाते हैं। भूमि तक उनकी पहुँच नहीं हो पाती; लेकिन यदि वायुमण्डल का घिराव पतला होता तो उल्कापात से धरती सुरक्षित न रहती। वायुमंडल से जहाँ अन्य लाभ प्राप्त होते हैं, वहीं उसके कारण भयंकर उल्कापातों से पृथ्वी की रक्षा भी होती है।

इस प्रकार के कितने ही उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि ब्रह्माण्ड की व्यवस्था उद्देश्यपरक है। यह उद्देश्यमूलक (Teleological) तथ्य इस बात की सूचना देता है कि ब्रह्माण्ड का निर्माण

योजना (Planning) के साथ हुआ है। योजना सदैव भविष्य को देखते हुए बनाई जाती है। इस विचार से सहमत होना पड़ेगा कि 'कार्य-कारण सम्बन्ध' में यदि हम भूतकाल से वर्तमान की ओर आते हैं तो सोद्देश्यता विषयक तथ्य के सिलसिले में वर्तमान का विचार भविष्य की ओर से किया जाता है।[1] स्पष्ट है कि सोद्देश्य कार्य सदैव भविष्य को ध्यान में रखते हुए किया जाता है।

फिर किसी भी योजना की कल्पना योजनाकार के बिना सम्भव नहीं। फिर एक अच्छी योजना के लिए एक अच्छे योजनाकार की आवश्यकता अपरिहार्य होती है। यहीं से हमें एक कुशल योजनाकार और नियन्ता की सत्ता का अकाट्य प्रमाण मिलता है। उस नियन्ता और योजनाकार की अस्वीकृति वास्तव में ब्रह्माण्ड और स्वयं अपने अस्तित्व में पाई जानेवाली सोद्देश्यता विषयक तथ्य की अस्वीकृति होगी और इसकी अस्वीकृति अवैज्ञानिक नीति के अतिरिक्त कुछ नहीं।

अनुकूलता एवं एकसरता का नियम

फिर ब्रह्माण्ड की वस्तुओं में परस्पर जो समानुकूलन (Coordination) और सामंजस्य (Harmony) पाया जाता है, उसे किसी अन्धी अप्रत्याशित घटना (Blind Chance) का परिणाम नहीं कहा जा सकता है। क्या यह सम्भव है कि मुद्रणाक्षरों (Types) को यूँ ही किसी काग़ज़ पर बिखेर देने से एक सुन्दर कविता की संरचना हो जाएगी? कदापि नहीं, इसी प्रकार क्या यह मुमकिन है कि एक बन्दर टाइपराईटर मशीन पर यूँ ही अललटप हाथ चलाए और एक उत्तम कहानी टाइप होकर आपके सामने आ जाए और कहानी भी ऐसी कि वह आलोचना की प्रत्येक कसौटी पर पूरी उतरे और उसमें विषय एवं भाव सम्बन्धी कोई दोष न हो? फिर यह मानने के अतिरिक्त अन्य न्यायसंगत बात क्या हो सकती है कि इस जगत् का स्रष्टा और संचालक एक सर्वोच्च चेतना (Supreme Mind) है। वस्तु जगत् का निर्माण चिन्तन-क्रिया द्वारा हुआ है। जगत् में जो उद्देश्यपरक (Teleological) नियम क्रियात्मक

1. Hocking : Types of Philosophy, p. 106

रूप में दिखाई देता है उसकी यथार्थ व्याख्या इस आधार पर कदापि नहीं की जा सकती कि यह यान्त्रिक (Mechanical) शक्तियों का आकस्मिक परिणाम है। साध्य के अनुकूल साधनों के बनने के एक दो नहीं अगणित उदाहरण जगत् में पाए जाते हैं जिनसे स्पष्टतः मालूम होता है कि उन्हें विचारपूर्वक बनाया गया है।

चुनाव एवं एकत्रीकरण

जानवरों के विभिन्न अंगों का चुनाव इस प्रकार किया गया है कि वे एक दूसरे तथा उन विभिन्न वातावरणों—भूमि, जल या वायु—के अनुकूल हो सकें जहाँ वे रहते हैं। प्रकृति में इस प्रकार के चुनाव (Selection), एकत्रीकरण (Combination), क्रमस्थान (Gradation) तथा बुद्धिशील योजना (Design) के जो चिह्न मिलते हैं वे एक बुद्धिमान रचयिता के चिह्न हैं। वे ईश्वरीय सत्ता की ओर इंगित करते हैं जो प्रकृति में एक योजनाकार के रूप में व्यक्त हुआ है।

चुनाव और परस्पर सम्बन्ध (Co-relation) के सुन्दर, दृष्टान्त शारीरिक अंगों (Corporeal Organs) और उनके विकास की सुसंगति (Harmony of Growth) में मिलते हैं। मस्तिष्कों को देखिए; उसे आप अपनी हथेली पर थाम सकते हैं। यदि आपने उसे अपनी हथेली पर लिया तो आपके हाथ पर एक अरब कोशिकाएँ आ जाएँगी। प्रत्येक कोशिका में 60 हज़ार केन्द्र-बिन्दु हो सकते हैं। इस प्रकार प्रकृति में जहाँ कहीं कार्य-कारण का सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है, वहाँ व्यवस्था का ऐसा अटूट क्रम दिखाई देता है जो बुद्धि और इरादे के बिना सम्भव नहीं। चुनाव परस्पर सम्बन्ध तथा क्रम में दीख पड़नेवाला संश्लिष्ट अनुकूलीकरण किसी बुद्धिमान सत्ता द्वारा ही नियमित होता है, ऐसा मानना ही पड़ेगा।

अनन्त सत्ता की कल्पना

एक और पहलू से विचार कीजिए। मावन का अस्तित्व अन्तयुक्त अस्तित्व है, अर्थात् मानव कोई अनन्त सत्ता नहीं है, किन्तु यदि उसे आत्म-चेतना (Self-consciousness) प्राप्त है, तो वह अनन्त सत्ता की

कल्पना कर सकता है। उसके मानस में एक अनन्त, चरम तथा सब प्रकार से पूर्ण सत्ता (Perfect Being) की धारणा (Idea) स्वयं विद्यमान है। प्रश्न यह है कि इस धारणा का मूल कारण क्या है? अन्तयुक्त वस्तु अनन्त सत्ता की धारणा उत्पन्न कर सके, यह सम्भव नहीं। किसी पात्र में जो कुछ होगा उसके अतिरिक्त उससे कोई दूसरी चीज़ प्राप्त नहीं की जा सकती। फिर जो स्वयं अनन्त, चरम और सब प्रकार से पूर्ण न हो उसे अनन्तता का कर्त्ता कहना नितान्त असंगत बात है। यह ईश्वर के अस्तित्व के सिलसिले में एक प्रत्याश्रित तर्क (Ontological argument) है जिसका खण्डन सरल नहीं है, क्योंकि इससे हमारे चिन्तन के मौलिक आधारों को आघात पहुँचेगा।

सृष्टि का आदि कारण

ईश्वर को आदि कारण (First Cause) के रूप में भी दार्शनिकों ने जाना है। प्रत्येक कार्य को एक कारण अपेक्षित होता है। यह जगत् एक कार्य है। इसके लिए भी कोई कारण होना चाहिए। फिर उस कारण का भी कोई कारण होगा। इसी प्रकार यह क्रम चलता रहेगा। परन्तु कार्यों से कारणों की ओर अनन्त काल तक नहीं जाया जा सकता। अतः कहीं-न-कहीं रुकना पड़ेगा और एक आदि कारण के अस्तित्व को स्वीकार करना पड़ेगा जो किसी अन्य कारण पर निर्भर न हो और वेदान्त ने भी ऐसा माना है। वह मानता है कि निमित्त कारण ईश्वर ही है और उपादान कारण भी ईश्वर ही है। उसकी धारणा है कि वही विविध नाम रूपात्मक जगत् के रूप में परिणत हो जाता है। जैसे मकड़ी जाल बनाती है तो जाला बनाने की योग्यता के कारण वह निमित्त कारण होती है और जाला बनाने का पदार्थ भी अपने भीतर शरीर से ही निकालती है, इसलिए वही उपादान कारक भी होती है। डॉ॰ राधाकृष्णन भी मानते हैं कि ईश्वर बिना साधनों के सृष्टि रचता है। ईश्वर ही है जिसे जगत् का आदि कारण कहा जा सकता है।

हरीत मार्टिन्यू (Harriet Martineau 1802-1876) के मतानुसार कारण एक शक्ति है जो कार्य को उत्पन्न करती है। कार्य-कारणत्व केवल शक्ति के अस्तित्व को ही नहीं बताता बल्कि यह भी बताता है कि उस शक्ति का

एक विशेष दिशा की ओर गमन होता है। शक्ति का प्रारम्भ तथा उसका विशेष दिशा (Direction) में मुड़ना ये दोनों मानस में ही सम्भव हैं। जिस शक्ति या कारण का हमें प्रत्यक्ष ज्ञान होता है वह मानसिक शक्ति ही है। प्रकृति की शक्ति भी अन्धकार में कार्य करनेवाली कोई शक्ति न होकर मनस् (चेतना) की, अनन्त मनस् या ईश्वर की शक्ति है। ईश्वर ही जगत् का कारण है। यह ब्रह्माण्ड-मीमान्सा विषयक तर्क (Cosmological argument) भी कोई निर्बल तर्क नहीं है।

प्रकृति को एक यन्त्र-रचना (Mechanism) समझनेवाले कह देते हैं कि प्रकृति अपनी व्याख्या के लिए किसी ईश्वर पर निर्भर नहीं, क्योंकि यन्त्र-रचना अपनी व्याख्या स्वयं करती है। किन्तु यह दावा सही नहीं कि यन्त्र-रचना अपनी व्याख्या आप करती है। यन्त्र-रचना के विभिन्न भागों का पारस्परिक सम्पर्क उस समय तक वुजूद में नहीं आता और न अपने-आप उसमें गति पैदा हो जाती है जब तक कि कोई चेतनायुक्त सत्ता अपने इरादे से उन्हें क्रमबद्ध करके चालू न करे।

इसके अलावा अब प्रकृति का यान्त्रिक दृष्टिकोण रद्द किया जा चुका है और विज्ञान की खोज हमें इस दिशा में ले जा रही है कि हम व्यक्तित्व या मानस को ब्रह्माण्ड का आदि कारण स्वीकार करें और प्रकृति को एक महान कल्पना के सदृश समझें। सर जेम्स जीन्स (Sir James Jeans) और लार्ड नेगटन का यही विचार है। प्रोफ़ेसर वाइटहेड (Pr. White head) की दृष्टि में भी ब्रह्माण्ड की व्यवस्थित संरचना की व्याख्या सम्भव नहीं, जब तक कि किसी ऐसी सत्ता को स्वीकार न करें जो स्वयं प्रकृति से परे हो। जेम्स जीन्स के मतानुसार ब्रह्माण्ड महान मशीन की अपेक्षा एक महान विचार (Great Thought) की हैसियत रखता है। यह वाह्‍य जगत् जिनका अनुभव समान रूप से हम सब करते हैं (वह हमारे व्यक्तिगत मानस के बजाय) एक ऐसे विश्वव्यापी (Universal) मानस में पाया जाता है जिससे हम सबका सम्पर्क (Contact) है या जिसके हम सब अंश (Parts) हैं।

यह जगत् और मानव सदैव से नहीं हैं। इसे स्वयं वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है। अब प्रश्न यह है कि क्या किसी रचना की कल्पना

रचनाकार की अनुपस्थिति में सम्भव है? बिना आधार के किसी संरचना की कल्पना नहीं की जा सकती। विशाल जगत् को आधारहीन कैसे कहा जा सकता है? क़ुरआन बताता है कि यह विशाल जगत् आधारहीन नहीं बल्कि इसका रचयिता 'ईश्वर' है। ईश्वर के बारे में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए।[1]

फिर जब धरती और आकाश के अस्तित्व में हमें सन्देह नहीं होता तो इनके सृष्टिकर्ता के विषय में सन्देह कैसे किया जा सकता है? क़ुरआन ऐसे लोगों से प्रश्न करते हुए पूछता है—

> "क्या वे बिना किसी चीज़ के पैदा हो गए या वे स्वयं ही अपने पैदा करनेवाले हैं?" (क़ुरआन, सूरा-52 तूर, आयत-35)

आगे क़ुरआन उत्तर देता है कि ऐसा नहीं है, उनका रचयिता ईश्वर है और उनके इनकार का मूल कारण उनकी नास्तिकता है।[2]

ईश्वर दिव्यगुणों से सम्पन्न है। वह सर्वव्यापी, अजर और अमर है। वह सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा है। वह तत्वदर्शी और दयावान है और इसके साथ वह स्वाभिमानी भी है। उसे वही लोग प्रिय हो सकते हैं जो उसके आज्ञाकारी हों। वह अवज्ञाकारी और अकृतज्ञ व्यक्तियों को कैसे पसन्द कर सकता है। क़ुरआन में है—

> "यदि वे मुँह मोड़ें तो ईश्वर भी अवज्ञाकारियों से प्रेम नहीं करता।"
> (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-32)

> "तुम ईश्वर के साथ इनकार की नीति कैसे अपनाते हो, जबकि तुम निर्जीव थे तो उसने तुम्हें जीवन प्रदान किया। फिर वही तुम्हारे प्राण ले लेगा, फिर वही तुम्हें पुनः जीवन प्रदान करेगा, फिर उसी की ओर तुम्हें पलटकर जाना है?" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-28)

मतलब यह है कि जब तुम ईश्वरीय चमत्कार इतने निकट से देख रहे हो कि स्वयं तुम्हारा अपना जीवन भी उसी की कृपा और सामर्थ्य का जीता-

1. क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, आयत-10
2. देखिए क़ुरआन, सूरा-52 तूर, आयत-36

जागता प्रमाण है तो फिर उस ईश्वर से तुम्हारी विमुखता का कारण इसके सिवा और क्या हो सकता है कि तुम्हें न सत्य-असत्य की चिन्ता है और न किसी के उपकार के प्रति तुम्हें अपने कर्तव्य का एहसास! लेकिन यह भी सोच लो कि बात यहीं तक समाप्त होनेवाली नहीं है। ईश्वर जीवन देने के पश्चात् मारता भी है और वह पुनः लोगों को जीवित करके अपने समक्ष खड़ा करेगा, भले-बुरे कर्मों का बदला देगा और किसी को यह कहने का अवसर न होगा कि यह संसार अन्धेरनगरी है। क़ुरआन में है—

> "वही है जिसने तुम्हारे लिए कान और आँखें तथा दिल बनाए। तुम कृतज्ञता थोड़ी ही दिखाते हो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, आयत-78)

सारांश यह है कि यदि तुम ईश्वर को नहीं मानते या उसके आदेशों की कोई परवाह तुम्हें नहीं होती तो वास्तव में न तो तुम अपनी आँखों और कानों से काम लेते हो और न अपने दिल का ही तुम आदर करते हो। क़ुरआन कहता है—

> "वही ईश्वर है जिसके सिवा कोई प्रभु-पूज्य नहीं, परोक्ष और प्रत्यक्ष को जानता है। वह बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है। वही ईश्वर है जिसके सिवा कोई पूज्य नहीं। वह बादशाह है अत्यन्त पवित्र, सर्वथा सलामती, निश्चिन्तता प्रदान करनेवाला, संरक्षक, प्रभुत्वशाली, प्रभावशाली (टूटे हुए को जोड़नेवाला), अपनी बड़ाई प्रकट करनेवाला। महान और उच्च है ईश्वर उस बहुदेववादी कर्म (शिर्क) से जो वे करते हैं। वही ईश्वर है जो संरचना का प्रारूपक है, अस्तित्व प्रदान करनेवाला, रूप देनेवाला है। उसी के लिए अच्छे नाम हैं। जो चीज़ भी आकाशों और धरती में है, उसी की महिमागान कर रही है। और वह प्रभुत्वशाली, तत्त्वदर्शी है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-22-24)

सोचने की बात यह है कि क्या ऐसे ईश्वर की ओर से विमुख होकर मानव कभी सफल हो सकता है? कदापि नहीं!

नैतिक दृष्टि से विचार

इस विषय में नैतिक दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है। काण्ट (Kant) के बाद से ईश्वरीय सत्ता के प्रमाण के सम्बन्ध में नैतिकता सम्बन्धी प्रमाण को पर्याप्त महत्व मिला है। नैतिक-चेतना का आभास प्रत्येक व्यक्ति को होता है। काण्ट के मतानुसार नैतिक चेतना को मान लेने के बाद नैतिक दायित्व की पूर्ति हमारे लिए सर्वथा अनिवार्य प्रतीत होती है। नैतिक क़ानून एक स्पष्ट अनिवार्य (Categorical Imperative) आदेश के रूप में हमारे सामने आता है। साथ ही हमें यह भी विश्वास होता है कि वही जीवन वास्तव में बुद्धि एवं प्रकृति के अनुकूल है जो नैतिक नियम के अन्तर्गत हो। नैतिक दायित्व की यह चेतना एक ऐसा तथ्य है जो स्वयं सिद्ध है। इसे सिद्ध करने के लिए किसी वाहय प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती। यह उस मणि के सदृश है जो स्वयं चमक रहा हो, उसके लिए अलग से प्रकाश की व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या यह सम्भव है कि इस नैतिक चेतना को पदार्थ की उपज कहा जाए? क्या पदार्थ को नैतिक चेतना का आधार ठहराया जा सकता है? क्या मात्र पदार्थ आदि भौतिक वस्तुओं में यह गुण पाया जा सकता है कि वे हमें हमारे नैतिक कर्तव्यों से अवगत करा सकें और वह भी इस प्रकार कि उचित होने में हमें किसी तरह का सन्देह न हो? स्पष्ट है कि भौतिक वस्तुओं को नैतिक चेतना का मूल स्रोत नहीं कहा जा सकता, बल्कि मानना पड़ेगा कि नेकी और भलाई की कल्पना के पीछे किसी महान चैतन्य सत्ता का हाथ है। एक चैतन्य सत्ता ही मानव-जीवन को नैतिक क़ानून के अन्तर्गत रखने की प्रेरणा दे सकती है।

नैतिक चेतना का आभास हमें यह मानने पर बाध्य करता है कि हमारी दृष्टि संकुचित न हो। हम तात्कालिक लाभ-हानि के लोभ और भय से अपने को ऊपर उठाएँ। कारण यह कि कभी नैतिक कर्त्तव्य के निर्वाह में हमें धन की हानि और नैतिक कर्त्तव्य के उल्लंघन में धन का लाभ दीख पड़ता है। उदाहरण के लिए आप एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना कीजिए जिसे चलते हुए

मार्ग में एक बैग पड़ा हुआ मिलता है। उस बैग में हज़ारों रुपयों के नोट मौजूद हैं। बैग में एक डायरी भी रखी हुई है जिससे यह मालूम हो जाता है कि वह रुपये किस व्यक्ति के हैं। नैतिक चेतना की माँग यह होती है कि रुपये उसके मालिक को पहुँचा दिए जाएँ। वह व्यक्ति नैतिक चेतना की माँग को पूरा करते हुए रुपयों से भरे हुए उस बैग को उसके मालिक तक पहुँचा देता है। हालाँकि वह व्यक्ति अपने कर्तव्य की उपेक्षा करके हज़ारों रुपये हासिल कर सकता था। यहीं से यह बात भी समझ में आती है कि नैतिकता का आधार कोई अत्यन्त उच्च लक्ष्य ही हो सकता है। इसलिए कि कर्त्तव्यों के पालन में धन ही नहीं आराम और प्राण तक की आहुति देनी पड़ सकती है। फिर वह उच्च लक्ष्य क्या है जिसकी प्राप्ति के लिए हमारी नैतिक चेतना हमें सामान्य लाभ-हानि के लोभ और भय से ऊँचा उठने की प्रेरणा और आदेश देती है, और आदेश भी ऐसा यथार्थ जो स्वयं हमारे भीतर ध्वनित होता है? क्या ऐसा लक्ष्य भौतिक पदार्थों द्वारा निर्मित हो सकता है? कदापि नहीं! जब नैतिक चेतना हमें भौतिक लाभ-हानि से ऊपर उठने का संकेत करती है तो फिर यह कैसे सम्भव है कि भौतिक वस्तुओं के द्वारा उस लक्ष्य का निर्माण हुआ हो जो स्वयं भौतिक वस्तुओं को नैतिक रक्षा के लिए उपेक्षित ठहराए? वह लक्ष्य तो किसी परम सत्ता का ही नियत किया हुआ हो सकता है जो मानव के भीतर नैतिक चेतना रखने का सामार्थ्य रखता है और जो अत्यन्त उच्च एवं महान है। एक ईश्वर की कल्पना किए बिना नैतिक चेतना की कोई सन्तोषजनक व्याख्या नहीं की जा सकती, यह एक वास्तविक तथ्य है।

एक विशेष तथ्य

क़ुरआन के अध्ययन से एक विशेष तथ्य का उद्घाटन होता है। वह यह है कि यदि मनुष्य सूक्ष्मग्राही (Sensitive) है और उसमें अनुभूति की तीव्र शक्ति है, तो इस जगत् में उसे हर ओर सत्य आलोकित होता दिखाई देगा। यहाँ क़ुरआन से कुछ उद्धरण प्रस्तुत करना उचित होगा।

"ईश्वर का महिमागान कर रही है हर वह चीज़ जो आकाशों में है

और जो धरती में है। उसी का राज्य है और उसी की स्तुति है; और उसे हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है।"

(क़ुरआन, सूरा-64 तग़ाबुन, आयत-1)

क़ुरआन की इस आयत से ब्रह्माण्ड सम्बन्धी एक विशेष तथ्य का उद्घाटन होता है और मन में उठनेवाले एक मौलिक प्रश्न का उत्तर मिलता है। ये आकाश और धरती और इनमें पाई जानेवाली वस्तुएँ, उनकी गतिविधियाँ और उनका कार्यक्रम बुद्धिहीन और हृदयरहित के लिए तो किसी महान अलौकिक सत्य का उद्भासक नहीं है, किन्तु बुद्धि, हृदय और दृष्टिवाले इनके माध्यम से सत्य का प्रत्यक्ष अवलोकन करते हैं। किसी पुस्तक में अंकित बातें जिस प्रकार उस पुस्तक के माध्यम से सरलतापूर्वक जानी जाती हैं उससे कहीं अधिक ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड में दीख पड़नेवाली चीज़ें एक बड़ी सत्यता को व्यक्त करती हैं। वे किसी महान और सामर्थ्यवान सत्ता की महानता को प्रकट करती हैं। जो प्रशंसनीय चीजें हम यहाँ देखते हैं वे एक चेतन सत्ता का परिचय देने में पूर्णतः पर्याप्त हैं। जो प्रभुत्व ब्रह्माण्ड द्वारा उद्भासित होता है क्या उसका कोई आधार नहीं है? ऐसे नहीं हो सकता। समझ में न आनेवाली बात यदि है, तो वह यह नहीं कि जगत् का कोई महान स्रष्टा एवं नियन्ता है, प्रत्युत समझ में न आनेवाली बात यह है कि सृष्टि की कल्पना बिना स्रष्टा के और कार्य की कल्पना बिना कर्त्ता के की जाए।

क्या जगत् को देखकर भावुक हृदय से किसी अनजानी सत्ता के लिए स्तुति के जो शब्द स्वतः निकलने लगते हैं उनका कोई अर्थ नहीं होता? ऐसा नहीं हो सकता। सब कुछ देखकर मानव भले ही चुप्पी साध ले, किन्तु विराट ब्रह्माण्ड तो चुप नहीं है, वह तो बोल रहा है। उसके तो कण-कण में किसी महान की महानता का गायन ध्वनित हो रहा है और होता रहेगा। वही है जिसे सुहृदय लोग—अल्लाह, ख़ुदा, ईश्वर, गॉड इत्यादि विभिन्न नामों से याद करते हैं।

सन्देहवादी विचारक डैविड ह्यूम (David Hume, 1711-1776 ई॰) को भी एक दिन संध्या समय घर आते समय अपने एक मित्र से कहना पड़ा

था—

When one looks at the sky studded with stars, he can not but feel that it is all work of an Intelligent Being.

"जब कोई व्यक्ति तारों जड़ित आकाश को देखता है, तो अनिवार्यतः उसे लगता है कि ये सब किसी चेतन के कार्य हैं।"

क़ुरआन का एक दूसरा उदाहरण लीजिए—

"क्या ईश्वर की पैदा की हुई किसी चीज़ को उन्होंने देखा नहीं कि किस प्रकार उसके साये ईश्वर को सजदा करते विनम्रता दिखाते हुए दाएँ और बाएँ ढलते हैं?" (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-48)

एक दूसरी जगह कहा—

"फिर इसके पश्चात् भी तुम्हारे दिल कठोर हो गए, तो वे पत्थरों की तरह हो गए अपितु उनसे भी अधिक कठोर; क्योंकि कुछ पत्थर ऐसे भी होते हैं जिनसे नहरें फूट निकलती हैं और उनमें से कुछ ऐसे भी होते हैं कि फट जाते हैं तो उनमें से पानी निकलने लगता है और उनमें से कुछ ऐसे भी होते हैं जो अल्लाह के भय से गिर जाते हैं। और जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह उससे बेख़बर नहीं है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-74)

किसी चीज़ का ढलना किसी ऊँचाई की दृष्टि से माना जाता है और उच्चता वास्तविक रूप से एक ईश्वर को ही प्राप्त है। उसके सामने हर चीज़ नत और झुकी हुई है। जहाँ और जिस रूप में पस्ती और झुकाव का प्रदर्शन होता है वह वास्तविक रूप में ईश्वर के आगे होता है। प्रत्येक झुकाव एवं नति का संकेत ईश्वर की महानता की ओर है। किसी वृक्ष आदि की छाया ढलकर अपनी दीनता ही नहीं, ईश्वर की महानता को भी साकार करती है। यही दीनता या झुकाव वास्तव में ईश्वर को सजदा है।

इसी तरह पर्वत से किसी पत्थर का खिसक या लुढ़ककर नीचे गिरना भी एक बड़ी सच्चाई को व्यक्त करता है और वह सच्चाई यही है कि ईश्वर महान एवं सर्वोच्च है। यदि ऊँचाई और महानता का कोई अस्तित्व न हो

तो ऊपर से नीचे गिरने का कोई अर्थ ही न होगा। उच्चता और महानता ईश्वर का गुण है। नति और अवतलता (गहराई) संसार में जहाँ कहीं और जिस रूप में है वह वस्तुतः ईश्वर के आगे ही नतमस्तक होने का प्रदर्शन है। किसी पर्वत-शिखर से यदि कोई पत्थर नीचे गिरा, तो जगत् जो चाहे इसका कारण बताए, किन्तु इसका वास्तविक कारण तो यही है कि वह ईश्वर से भयभीत होकर गिरा। उसके अतिरिक्त कोई नहीं जिसके समक्ष दुनिया की चीज़ें झुक रही हों और उसका भय मानती हों। दुनिया में दिखाई देनेवाली हर उच्चता ईश्वरीय उच्चता ही की ओर एक संकेत है। इसी प्रकार यहाँ का हर झुकाव वास्तविक दृष्टि से ईश्वरीय सत्ता ही के आगे है। यह वास्तविकता किसी भी समय निगाह से ओझल न हो, जीवन की सार्थकता इसी में है।

संसार के रचयिता ने यही नहीं कि चीज़ों की वाह्य संरचना को अपनी इच्छा के अनुकूल बनाया है बल्कि उनमें आन्तरिक गुण एवं स्वभाव भी अपनी इच्छा के अनुकूल रखा है। वस्तुएँ वास्तव में उसी से प्रेरित और प्रभावित हैं। यह प्रेरणा एवं प्रभाव जहाँ और जिस रूप में व्यक्त होता है वहाँ स्पष्ट दीख पड़ता है कि वस्तुओं का गुण एवं व्यापार ईश्वरीय सत्ता के प्रति समर्पित है। कहीं ईश्वर की दयालुता दिखाई देती है तो कहीं उसका प्रताप और तेज़ ज़ाहिर होता है। सांसारिक वस्तुएँ कहीं उसका सौन्दर्य समेटती दिखाई देती हैं और कहीं उससे भयभीत नज़र आती हैं।

क़ुरआन के उद्धृत अंशों से अनुमान लगाया जा सकता है कि मनुष्य यदि भावुक एवं अनुभूतिशील है और उसमें सूक्ष्मदर्शिता का गुण मौजूद है तो उसे ईश्वरीय सत्ता के साक्ष्य हर ओर मिलेंगे। हर चीज़ विभिन्न रूपों में उसी की ओर उन्मुख दिखाई देगी। ईश्वर की ओर संकेत करने का मात्र साधन सजदा और महिमागान है। ईश्वर के विषय में सजदा के सिवा किसी और चीज़ का साहस नहीं किया जा सकता। वस्तुओं का गुण एवं व्यापार ईश्वरीय प्रभाव एवं प्रेरणा से विलग नहीं और सृष्ट वस्तुओं में उसके प्रभाव की अभिव्यक्ति सजदा के रूप में ही सम्भव है। क़ुरआन में है—

"क्या तुमने देखा नहीं कि ईश्वर ही को सजदा करते हैं वे सब जो

आकाशों में हैं और जो धरती में हैं, और सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पर्वत, वृक्ष, पशु और बहुत-से मनुष्य? और बहुत-से ऐसे हैं जिन पर यातना का औचित्य सिद्ध हो चुका है।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-18)

मालूम हुआ कि केवल मानव को यह अवसर प्राप्त है कि वह चाहे तो ईश्वर को सजदा करे या चाहे तो सजदा करने से इनकार कर दे। यद्यपि उसने यदि इनकार की नीति अपनाई तो यह नीति स्वयं उसी के लिए घातक सिद्ध होगी। जगत् की सारी चीज़ें ईश्वर से प्रेरित और प्रभावित हैं। ईश्वरीय प्रभाव एवं प्रेरणा ही से उनकी आत्मा सिद्ध हो रही है। अब जो चीज़ें प्रत्यक्ष रूप में भी झुकती दीख पड़ती हैं तो उनका यह वाह्य रूप उनकी आत्मा एंवं वास्तविकता को ही साकार करता है। जिसके कारण सरलता से उनके वास्तविक स्वरूप की ओर हमारा ध्यान जाता है।

धर्म की मूल प्रवृत्ति और ईश-धारणा

ईश-धारणा को धर्म ने अपना केन्द्र बिन्दु (Central Idea) माना है। दूसरी सारी चीज़ें इसी केन्द्र बिन्दु के गिर्द घूमती हैं। धर्म के विषय में साधारणतया विचारकों ने अपनी जो धारणा बनाई है उससे धर्म की पूरी व्याख्या नहीं होती। समाजशास्त्र (Sociology), मनोविज्ञान (Psychology) और मानव-विज्ञान (Anthropology) ने धर्म की वास्तविकता को समझने में अपना योगदान दिया है। दार्शनिकों ने धर्म के विचारात्मक पहलू पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित किया है। उन्होंने धर्म को ज्ञान, अन्तर्दृष्टि आदि की संज्ञा दी। धर्म को ब्रह्माण्ड के प्रति एक धारणा कहकर उसे दार्शनिक रूप देने का प्रयास भी उन्होंने किया है, बल्कि बेनेदितो क्रोचे (Benedetto Croce) के विचार में तो धर्म एक अपूर्ण दर्शन ही है जो जीवन-सम्बन्धी तथ्यों को बयान करने में उपमाओं और रूपकों आदि का सहारा लेता है।

एक दूसरा दृष्टिकोण यह है कि धर्म नैतिकता ही का दूसरा नाम है। वह मानव के चरित्र और कर्म को सँवारता है। इस दृष्टिकोण से नैतिक जीवन में इरादे की शक्ति को विशेष महत्व प्राप्त है।

एक दूसरा वर्ग विचार और इरादा दोनों ही दृष्टिकोणों से अलग एक अन्य धारणा का प्रतिपादन करता है। उसके मतानुसार धर्म का मूल आधार अनुभूति या एहसास है। वह एहसास चाहे अपनी दीनता और आत्मसमर्पण का एहसास हो, या एक प्रकार का भय हो जो सामान्य भय से नितान्त भिन्न होता है। यह एहसास अपने उच्चतम स्तर पर दिल की आर्द्रता, घुलावट और आदर की भावना के रूप में व्यक्त होता है। यह अपने स्रष्टा के समक्ष अपनी प्रतिक्रिया (Reaction) है। इसके साथ इसमें एक प्रकार की असमर्थता की भावना, विस्मय और रहस्यमय सत्ता के समक्ष ज्ञान के एक प्रकार से असमर्थ रह जाने का भाव भी पाया जाता है और यह धर्म का एक अनिवार्य तत्व सा प्रतीत होता है। मानव-चेतना में ईश्वर की परिकल्पना का एक भययुक्त रहस्य है जिससे मानव में भय और कम्पन पैदा होता है, किन्तु साथ ही उस रहस्यमय सत्ता के प्रति एक अद्भुत और मनोरम आकर्षण और खिँचाव की अनुभूति भी होती है।

ऊपर जिन तीन विचारधाराओं का उल्लेख किया गया है उनमें से प्रत्येक में सच्चाई का अंश सम्मिलित है, किन्तु इनमें से प्रत्येक धारणा धर्म की केवल अपूर्ण व्याख्या है। वास्तविकता यह है कि धर्म अपने में मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समाहित करना चाहता है। सत्य धर्म में बौद्धिक तत्व की उपेक्षा नहीं की गई है, किन्तु उसमें आस्था को भी विशेष महत्व प्राप्त है, उसमें रहस्यमयता का अंश भी सम्मिलित है। धर्म एक विचारधारा और जीवन-पद्धति भी है। इसमें मानव के इरादे और संकल्प को भी स्थान प्राप्त है और इसके साथ ही इसमें ईश्वरीय सहयोग, कृपा और सहायता की कामना और विश्वास भी उभरा हुआ दीख पड़ता है। धर्म को एक प्रकार की संदिग्ध स्थिति समझना सही न होगा। धर्म के द्वारा मानव की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति सम्भव है, जिसमें मानव-अन्तस की निहित आवश्यकताएँ भी सम्मिलित हैं। धर्म मानव के सम्पूर्ण जीवन की व्याख्या है। उसकी उपेक्षा वास्तव में अपने ही अस्तित्व का निरादर एवं उपेक्षा है।

मानव अपने दिल की आँखों से उस सत्य को पा लेता है जिसे पाने में बुद्धि पूर्ण रूप से समर्थ न थी। बुद्धि के साथ एक प्रकार का सन्देह और

दुविधा लगी रहती है, लेकिन अन्तर की आवाज़ के आगे सारे सन्देह नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार प्रातःकाल के आगमन पर अन्धकार ठहर नहीं सकता, उसी प्रकार आन्तरिक प्रकाश के समक्ष सन्देह और संदिग्धता की कालिमा का टिकना सम्भव नहीं रहता। यह अन्तर की शक्ति अपना कार्य किस प्रकार करती है इसके लिए हम यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहेंगे।

एडवर्ड्स अपने व्यक्तिगत अनुभव के उपरान्त कहता है कि ईश्वर का अनुभव एक भावानुभव द्वारा ही सम्भव है। तर्क हमें वह कुछ नहीं दे सकता जिसकी आकाँक्षा हमारे मन को हुआ करती है। एडवर्ड्स के मन में ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के सिद्धान्त के प्रति बहुत-सी आपत्तियाँ पाई जाती थीं, वे सारी आपत्तियाँ दूर हो गईं और यह सब कुछ एक विलक्षण ढँग से हुआ।

ईश्वर और दैवी वस्तुओं में जिस आन्तरिक एवं मधुर आनन्द की अनुभूति उसे हुई उसका पहला अवसर जो उसे याद है उस समय आया जब उसने बाइबल के ये शब्द पढ़े—

> "अब सनातन राजा अर्थात् अविनाशी, अनदेखे, एकमात्र परमेश्वर का आदर और महिमा युगानुयुग होती रहे। आमीन !"
>
> (1 तीमुथियुस 1/17)

एडवर्ड्स लिखता है कि इन शब्दों को पढ़ते हुए दैवी रूप की महिमा की एक भावना मेरी आत्मा में आई और जैसे उसमें फैलकर छा गई। एक नवीन भावना जो मेरे सारे पूर्व अनुभव से सर्वथा भिन्न थी। ...इसके पश्चात् दैवी वस्तुओं की मेरी भावना धीरे-धीरे बढ़ती गई और अधिकाधिक जीवन्त हुई और उसमें आन्तरिक माधुर्य भी अधिक आया। प्रत्येक वस्तु का रूप बदलकर रह गया और ऐसा प्रतीत हुआ जैसे लगभग हर वस्तु में ईश्वरीय महिमा की एक शान्त एवं मधुर छाया या प्रतीति आ गई है।[1]

एडवर्ड्स के मतानुसार सामान्य 'संकल्प-क्रिया' में संकल्प वास्तव में 'समझ के अन्तिम' आदेश द्वारा निर्णित होता है; किन्तु अलौकिक भावना

1. जोनाथन एडवर्ड्स, रिप्रेज़ण्टेटिव सेलेक्शन्स (न्यूयार्क 1935), पृष्ठ 58-60

का मामला इससे नितान्त भिन्न है, क्योंकि यहाँ तो ईश्वरीय महिमा की अनुभूति अथवा ग्राह्यता से उसकी समझ पैदा होती है। एडवर्ड्स कहता है :

"इसके तार्किक निर्णय में कि मधु मीठा होता है और उसकी मिठास के आश्वादन में अन्तर है। किसी वस्तु की उत्कृष्टता के परिकल्पित तार्किक निर्णय में और उसके माधुर्य और सौन्दर्य की भावना में बड़ा ही अन्तर है। पहले का आधार केवल मस्तिष्क में है, उसका सम्बन्ध मात्र कल्पना से है, किन्तु दूसरी बात का सम्बन्ध हृदय से है। जब हृदय में किसी वस्तु के सौन्दर्य और अनुकूलता की अनुभूति होती है तो अवश्य ही उसे ग्रहण करने में हृदय को सुख मिलता है।"[1]

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनानेवाले विचारकों के मनन-चिन्तन ने भी एक विश्वात्मा या महान् व्यक्तित्व का उद्घाटन किया है। उदाहरणार्थ जी॰ ए॰कोहेन, ई॰एस॰ ब्राइटमैन॰ ए॰सी॰ नुड्सन और आर॰टी॰ फ्लेवलिंग के कथना- नुसार चूँकि सारे मूल्य, परिप्रेक्ष्य अर्थ व्यक्तित्व में ही स्थित हैं, अतः व्यक्तित्व ही अन्तिम अनुभाविक पदार्थ है और ईश्वर व्यक्तियों का व्यक्ति है। यह दर्शन आस्तिकता का समर्थक है और इसका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक है।

जॉन केयर्ड का कथन है कि चेतना का अन्तिम आधार व्यक्ति (जीव) और आत्मा की चेतना नहीं है। व्यक्ति की आत्मा या चेतना का कोई अर्थ ही न होता यदि वह अधिक सार्वभौम चेतना (Universal Consiousness) पर जो उसके पीछे है, आधारित न होता। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (10/90) में भी उस परम सत्ता का उल्लेख 'पुरुष' शब्द द्वारा किया गया है : 'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्' अर्थात् 'जो भूतकाल में हुआ था और जो वर्तमान काल में है तथा जो भविष्यकाल में होनेवाला है, वह सब यह पुरुष ही है।' पुरुष कहते हैं जो इस सम्पूर्ण जगत् में पूर्ण हो रहा है। 'पुरुष शब्द की रचना 'पृ' धातु में 'कुषन्' प्रत्यय के योग से हुई है। अर्थात् पृ + कुषन् = पुरः कुषन्=पुरुष=पूर्णभू अनेन पुरुषेण जगत् इति पुरुष। यानी परमात्मा

1. जोनाथन एडवर्ड्स, रिप्रेज़ण्टेटिव सेलेक्शन्स (न्यूयार्क 1935), पृष्ठ 107
2. वैदिक कोश, पृष्ठ 942

सर्वव्यापी है और इससे सम्पूर्ण जगत् पूर्ण है। अतः वह पुरुष है।[2]

वेद में ईश्वर के लिए अनेक गुणवाचक एवं विशेषण शब्द प्रयुक्त हैं। यथा—इन्द्र, मित्र, वरुण इत्यादि।

एक प्रश्न

यहाँ यह प्रश्न भी किया जा सकता है कि यदि कोई ईश्वर है तो वह अपने होने की सूचना क्यों नहीं देता। दुनिया के कितने ही लोग उसके बारे में विभिन्न प्रकार के सन्देहों में पड़े हुए हैं और उसके प्रति उनकी अपनी नीतियाँ भी भिन्न हैं। ऐसी दशा में ईश्वर के चुप रहने का अर्थ क्या होगा? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि ईश्वर कभी चुप नहीं रहा है। उसने हर काल और प्रत्येक देश में अपना सन्देश भेजा। मानव-इतिहास में रसूलों और पैग़म्बरों का एक लम्बा सिलसिला पाया जाता है। रसूलों की मौलिक शिक्षाएँ सदैव एक ही रही हैं। सबने एक ईश्वर की ओर लोगों को आमन्त्रित किया। और ईश्वर के प्रति लोगों का जो कर्त्तव्य होता है उससे उन्हें अवगत कराया। इबराहीम (अलैहि॰), मूसा (अलैहि॰), ईसा (अलैहि॰) इत्यादि महापुरुष ईश्वर के सन्देष्टा यानी पैग़म्बर थे। ईश्वर ने इनके माध्यम से दुनिया को सम्बोधित किया है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ईश्वर के उन्हीं सन्देष्टाओं में से अन्तिम सन्देष्टा हैं। उन्होंने ईश्वर का सन्देश जगत् के समक्ष रखा। यह सन्देश और ईश-वाणी तो ऐसी है कि जो अक्षरशः अब तक सुरक्षित है और रहती दुनिया तक (अगर ईश्वर ने चाहा तो) सुरक्षित रहेगी। इसका मार्गदर्शन सार्वकालिक एवं हर परिस्थिति में पर्याप्त है। ईश्वर ने अपनी इस वाणी के द्वारा हमारे मन में उठनेवाले हर प्रकार के सन्देहों और शंकाओं को दूर किया है। यह एक सच्चाई है कि ईश्वरीय सन्देशवाहक स्पष्ट निशानियों और प्रमाणों के साथ आए। उनका पवित्र जीवन स्वयं इस पर गवाह है कि वे सच्चे थे।

रसूलों (पैग़म्बरों) का आना ईश्वरीय सत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण है। ईश्वर के बारे में सबसे विश्वसनीय ज्ञान वही है जो रसूलों (पैग़म्बरों) के द्वारा दुनिया में अवतरित हुआ।

हज़रत मूसा (अलैहि॰) के बारे में कहा गया—

"और जब वह अपनी जवानी को पहुँचा और भरपूर हो गया, तो हमने उसे निर्णय-शक्ति और ज्ञान प्रदान किया।"

(क़ुरआन, सूरा-28 क़सस, आयत-14)

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) अपने बाप से कहते हैं—

"हे मेरे बाप! मेरे पास ऐसा ज्ञान आ गया है जो आपके पास नहीं आया। अतः आप मेरा अनुसरण करें, मैं आपको सीधा मार्ग दिखाऊँगा।" (क़ुरआन, सूरा-19 मरयम, आयत-43)

पैग़म्बर हज़रत दाऊद (अलैहि॰) और सुलैमान (अलैहि॰) के बारे में कहा गया—

"और उनमें से हर एक को हमने (ईश्वर ने) निर्णय-शक्ति और ज्ञान प्रदान किया।" (क़ुरआन, सूरा-21 अम्बिया, आयत-79)

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) से कहा गया—

"और ईश्वर ने तुम पर किताब और हिकमत (तत्त्वदर्शिता) अवतरित की और उसने तुमको वह ज्ञान दिया जिससे तुम (पहले) अपरिचित थे।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-113)

पैग़म्बर प्रत्यक्षतः ईश्वर के सम्पर्क में आता है। सत्य के विषय में उसकी दी हुई सूचना निस्सन्दिग्ध होती है। उसके शब्द सत्य की कसौटी होते हैं। पैग़म्बर ज्ञान-लोक में सूर्य की तरह चमकते और अज्ञान के अन्धकार को नष्ट करते हैं। अब यह और बात है कि सूर्य की ओर से कोई व्यक्ति अपनी आँखें ही बन्द कर ले या अपने चारों ओर ऐसा वातावरण बना ले कि प्रकाश उस तक पहुँच ही न सके।

हृदय की पुकार

ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करने का विषय केवल बुद्धि एवं तर्क का विषय नहीं है। ईश्वर को मानना मानव की प्रकृति है। यह स्वीकार मन के अन्तःतल में विद्यमान है। जिस प्रकार जगत् में पाई जानेवाली बुद्धिमत्ता,

प्रवीणता और सुन्दर की व्याख्या ईश्वर को माने बिना असम्भव है, ठीक उसी प्रकार मन की कोमल और पवित्र भावनाओं की व्याख्या भी ईश्वर को माने बिना सम्भव नहीं। हृदय में गहरे प्रेम, सेवा और समर्पित होने की भावना पाई जाती है। इस भावना की उपेक्षा करना स्वयं मानव का तिरस्कार (Disregard) है। ईश्वर में विश्वास मानव-प्रकृति की पूर्ति है। इस विश्वास एवं आस्था का मानव के व्यक्तित्व से बहुत गहरा सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध पुष्प और सौन्दर्य, अग्नि और ज्वाला, जल और प्रवाह का-सा है।

जिस प्रकार वाह्य जगत् ईश्वरीय प्रभाव के अन्तर्गत चल रहा है। जिस प्रकार स्वयं मानव-शरीर में रुधिर-संचार, पाचन-क्रिया आदि के नियम ईश्वरीय आदेश एवं संकेत के वशीभूत हैं, उसी प्रकार यह भी अपेक्षित है कि शरीर की तरह मानव का अन्तर भी ईश्वर की ओर आकृष्ट हो, उसकी ओर से विमुख न हो। यही वह मन का सूक्ष्म व्यापार है जो धर्म और ईश्वरवाद की आधारशिला है। ईश्वर जिस प्रकार हमारे तन का स्रष्टा है उसी प्रकार हमारी आन्तरिक मनोवृत्तियों का भी स्रष्टा है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम शरीर की तरह ईश्वर की इस आन्तरिक सूक्ष्म रचना को भी विकृत न होने दें। जिस प्रकार हम यह पसन्द नहीं करते कि हमारी नाक या कान कटे हुए हों, उसी तरह हमारा अपना आन्तरिक स्वास्थ्य भी अभीष्ट होना चाहिए। हमें अपनी प्रकृति और वास्तविक स्वभाव की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। यही बात क़ुरआन ने इन शब्दों में कही है–

> "ईश्वर की उस प्रकृति का अनुसरण करो जिसपर उसने लोगों को पैदा किया। ईश्वर की बनाई हुई संरचना बदली नहीं जा सकती। यही सीधा और ठीक धर्म है, किन्तु अधिकतर लोग जानते नहीं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-30 रूम, आयत-30)

मतलब यह है कि विशुद्ध धर्म इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि मानव अपनी प्राकृतिक एवं स्वाभाविक माँग को पूरा करे। इसकी उपेक्षा एवं निरादर करके वह धर्म को ही विनष्ट नहीं करेगा बल्कि अपने निर्मल स्वरूप को भी विनष्ट कर देगा। सच्चा धर्म अपनी आत्मा का विकास है। धर्म हमारी प्रकृति अथवा वास्तविक स्वभाव का निषेध नहीं, धर्म तो हमारे

आन्तरिक भावों को पूर्णकाम बनाता है। किसी कार्य के धर्म-विरुद्ध होने क अर्थ यह है कि वह कार्य हमारी प्रकृति और हमारे आत्मिक स्वरूप वे प्रतिकूल है। इसलिए क़ुरआन में कहा गया है—

> "सफल हो गया वह व्यक्ति जिसने उसको (अपनी आत्मा को) विकसित किया और असफल हुआ वह जिसने उसे दबाया और अशुद्ध किया।" (क़ुरआन, सूरा-91 शम्स, आयत-9,10)

ईश्वर हमारे हृदय का एकमात्र आश्रय है। वह ऐसा परम पुरुष है जिसकी आभा से अखिल ब्रह्माण्ड आलोकित है, बल्कि स्वयं हमारे अन्त: तक की गहराइयाँ उसी के प्रकाश से आभासित हैं। हमारे शरीर को जीवित रहने के लिए वायु, जल, अन्न आदि कितनी ही चीज़ों की आवश्यकता होती है जिनकी व्यवस्था पूर्णरूपेण की गई है और यह भी आप जानते हैं कि इनमें से कोई भी चीज़ ऐसी नहीं जो हमारे अस्तित्व में जुटाई गई हो, बल्कि हमारे अपने शरीर से अलग इनका भण्डार पाया जाता है, फिर मानव को आत्मिक दृष्टि से अपने को अपने में ही पूर्ण होने का भ्रम क्यों होता है? शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह अपने से बाहर अन्न, जल आदि को तलाश करता है, फिर आत्मा के आलम्बन के लिए एक ईश्वर की प्राप्ति की इच्छा को वह क्यों दबाता है और इसे जीवन से असम्बद्ध समझने के भ्रम में पड़ता है? वास्तव में हमारे आत्मनिहित प्रयोजन ईश्वर से मिलकर ही पूरे हो सकते हैं। भौतिक आनन्दों की परिधि अत्यन्त सीमित होती है और वह हृदय-कामनाओं का साथ नहीं दे पाती। ईश्वर के बिना जीवन की परिभाषा अनिश्चित ही रहती है। जीवन और अमरत्व उसी की छाया में है। नास्तिकता के पश्चात् यदि व्यक्ति जीवित है, तो उसकी क्या दशा होती है इसके लिए डेविड ह्यूम (David Hume, 1711-1776 ई॰) का उदाहरण पर्याप्त है। वह अपनी क़िताब 'A Treatise of Human Nature' में अपनी मानसिक अशान्ति को स्वीकार करते हुए लिखता है—

> "मैं कहाँ हूँ और क्या हूँ? किस स्रोत से मेरा जीवन प्रवाहित होता है और यह कहाँ जाएगा? फिर किसकी कृपा की मैं लालसा करता हूँ और किसके कोप से मैं डरता हूँ? मेरे चारों ओर यह क्या है?

किसके ऊपर मैं प्रभाव रखता हूँ और कौन मेरे ऊपर प्रभाव रखता है? मेरे चारों ओर ये प्रश्न उठने लगते हैं और मैं अत्यन्त निराशापूर्ण अवस्था के विचार में पड़ जाता हूँ। मेरे चारों ओर अन्धकार छा जाता है और मेरी मानसिक शक्ति और अंग शिथिल हो जाते हैं।''

सच्ची बात यह है कि ईश्वर को स्वीकार करना और उसके प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह मानव के लिए उसी प्रकार सुखद और स्वाभाविक है जिस प्रकार एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए अपना जीवन सुखद एवं स्वाभाविक होता है। मानव को अपना जीवन कितना प्रिय होता है, इसका अनुमान इससे किया जा सकता है कि बहुधा लोगों को इसके कारण किसी अन्य विषय पर सोच-विचार का अवसर ही नहीं मिल पाता। वे अपने जीवन से ऊबते नहीं और न अपने दैनिक कार्य को वे अपने लिए कोई बोझ और बन्धन समझते हैं। ऐसा क्यों है? इसका कारण यही तो है कि उनका अपने जीवन-व्यापार से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। वे अपने व्यक्तित्व और अपने जीवन-व्यापार के बीच कोई दूरी और भिन्नता नहीं देखते। हमें अस्तित्व जिस रूप में मिला है, वह अत्यन्त सुखद एवं मधुर है। जीवन के प्रति विराग से हमारी आत्मा अपरिचित है।

इस सम्बन्ध में सही और स्वस्थ दृष्टिकोण यह है कि जिस प्रकार मानव जीवन को सहर्ष स्वीकार करता है, जीवन को अपने लिए कोई अप्रिय बोझ नहीं मानता, ठीक उसी प्रकार उसे ईश्वर को स्वीकार करना चाहिए और उसके प्रति अपने कर्त्तव्यों को समझना चाहिए। ईश्वर को स्वीकार करना कोई जीवन-विरोधी तत्व नहीं, बल्कि इसका हमसे वैसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसा कि स्वयं अपने जीवन से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मानव का अन्तर् अपने ईश्वर को पहचानता है। ईश्वर का स्वीकार मानव-प्रकृति में सम्मिलित है। ईश्वर से विमुख रहना अपना ही खण्डन करना है। जीवन और जीवनोद्देश्य दोनों ही पहलुओं से ईश्वर से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है। आत्मा परमात्मा के कारण है। आत्मा की ईश्वर से मुक्त कोई अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। डॉ॰ विलियम टेम्पल (1881-1944 ई॰) ने क्या ख़ूब कहा—

God minus world equals God;
The world minus God equals nothing.

जिस प्रकार दर्पण में हमारे बिम्ब की अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती, वह प्रत्येक क्षण हम पर ही आश्रित होता है, उसी प्रकार हमारा अस्तित्व ईश्वर पर आश्रित है, किन्तु जिस तरह दर्पण में हमारा बिम्ब है, स्वयं हम नहीं हैं उसी तरह आत्मा या हमारा अस्तित्व ईश्वर के गुण की मात्र छाया है, स्वयं परमात्मा नहीं।

ईश्वर ने हमें क्या नहीं दिया है? उसने हमें ज़रूरत की सभी चीज़ें दी हैं। देखने-सुनने की शक्ति के साथ उसने हमें कोमलतम अनुभूतियों की क्षमता भी प्रदान की। मानव-हृदय अत्यन्त सूक्ष्म, कोमलतम, मधुर भावनाओं का स्रोत है। मानव किसी ऐसी मरुभूमि के सदृश नहीं है जो बिलकुल ही शुष्क और उजाड़ हो, जिसमें कहीं कोई हरित भूखण्ड न पाया जाता हो और जिसमें किसी सुन्दर फूल के खिलने की सम्भावना न हो। इस पर भी यदि मानव को अपने परम उपकारक इष्ट पूज्य ईश्वर की खोज न हो तो यह अत्यन्त आश्चर्य की बात होगी।

ईश्वर में विश्वास रखने का आधार मात्र तर्क नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव-चेतना है। जब मानव-आत्मा किसी कारण विकल होती है, क्या यह सच नहीं है कि उस समय वह एक प्रभु को उसी प्रकार ढूँढ़ती है जिस प्रकार कोई प्यासी हिरणी जंगल में जल की तलाश में इधर-उधर दौड़ी फिरती है! क़ुरआन इस तथ्य की ओर संकेत करता हुआ कहता है—

> "वह कौन है जो विकल की पुकार सुनता है जब वह उसे पुकारे और तकलीफ़ को दूर करता है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-27 नम्ल, आयत-62)

लोगों को यद्यपि हृदय मिला है, किन्तु यह प्रश्न फिर भी शेष रहता है कि हृदय में पाई जानेवाली आलौकिक आकाँक्षा किसके लिए है? हृदय के लिए सच्ची शान्ति, परितोष और आराम की वस्तु क्या है? जीवन का यह ऐसा प्रत्यक्ष एवं सुदृढ़ पक्ष या अंग है जो उसे उसके ईश्वर से जोड़ता है।

ईश्वर से विमुख होकर जीवन व्यतीत करने की नीति अपनाकर मानव स्वयं अपने को आघात पहुँचाता है। जीवन में उसे कभी भी आत्म-शान्ति प्राप्त नहीं होती, क्योंकि शान्ति का मूल ईश्वर के प्रेम और उसके स्मरण में ही है। क़ुरआन कहता है–

"जान लो! केवल ईश्वर के स्मरण से ही हृदयों को शान्ति और तुष्टि प्राप्त होती है।" (क़ुरआन, सूरा-13 रअ्द, आयत-28)

मानव यदि चेतनारहित न बन जाए बल्कि वह सजग और चरित्रवान हो तो वह कभी भी ईश्वर-विरोधी नीति नहीं अपना सकता। ईश्वर तो उसकी ज़रूरत है और सबसे बड़ी ज़रूरत है। वह ईश्वर से अपने सम्बन्ध को सुदृढ़ करेगा, वह उसका कृतज्ञ और आज्ञाकारी होगा। यह एक ऐसा मनोवैज्ञानिक (Psychological) तथ्य है जिस पर क़ुरआन विश्वास एवं आस्था की नींव रखता है। क़ुरआन में है–

"ईश्वर तुम्हें यातना देकर क्या करेगा यदि तुम कृतज्ञता दिखाओ और ईमान लाओ? ईश्वर तो स्वयं गुणग्राहक और सर्वज्ञ है।"
(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-147)

एक दूसरी जगह क़ुरआन कहता है–

"वही है जिसने तुम्हें पैदा किया और तुम्हारे लिए कान, आँखें और दिल बनाए। तुम कृतज्ञता थोड़े ही दिखाते हो।"
(क़ुरआन, सूरा-67 मुल्क, आयत-23)

यह केवल तर्क का विषय नहीं है कि हमें ये कान, आँख और दिल किसने दिए हैं, बल्कि यह हमारे लिए कृतज्ञता का विषय भी है। ईश्वर में आस्था का आधार मात्र तर्क नहीं सम्पूर्ण मानव-चेतना है।

एकेश्वरवाद

ईश्वर एक है। यह एक वास्तविकता (Fact) ही नहीं स्वयं हमारी अपनी प्रकृति की सच्ची व्याख्या भी है। यह हमारे लिए शुभ है। हृदय की सेवा तो किसी एक ही के प्रति सम्भव है। भक्ति और ईश-सेवा को एकाग्रता चाहिए जो कई प्रभुओं की मौजूदगी में सम्भव नहीं। कई के साथ वफ़ादारी नहीं निभाई जा सकती। फिर ईश्वर के एक होने का अर्थ यह भी हुआ कि हर मामले में हम उसी एक ईश्वर को प्रसन्न करना चाहें, चाहे सांसारिक दृष्टि से इसमें हमारी कुछ हानि ही क्यों न हो रही हो। हमें उसी की मरज़ी पर चलना होगा, हमें उसी की दासता स्वीकार करनी होगी। हमारे हृदय में सबसे बढ़कर प्रेम और आदर उसी के लिए होना चाहिए।

क़ुरआन और अन्य ग्रन्थों के मतानुसार

ईश्वर एक है

जगत् बिना ईश्वर के नहीं है और न हो सकता है। फिर इसके साथ यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि ईश्वर एक है, कई नहीं। कई ईश्वर की कल्पना नहीं की जा सकती। कई ईश्वर की सम्भावना स्वयं ईश्वरत्व के विरुद्ध है। दो या कई ईश्वर माने जाएँ, तो उनमें से किसी को भी अपार सामर्थ्य एवं शक्ति से विभूषित नहीं माना जा सकता। इस रूप में तो शक्ति और सामर्थ्य का राज्य खण्डित होकर रह जाएगा। कई ईश्वर की मौजूदगी ईश्वरीय अधिकार और शक्ति को सीमित कर देनेवाली है। सीमित अधिकारों और सीमित शक्ति के साथ अनादि अस्तित्व (Eternal Existence) सम्भव नहीं।

विश्व में दो ईश्वर के चिह्न नहीं मिलते। दो विचार-तत्व अथवा दो विश्वव्यापी चिन्तन-क्रिया यहाँ कदापि लक्षित नहीं होती। एक ही चेतना और एक ही बुद्धि (Mind) का नियन्त्रण (Control) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर है। दो परम-सत्ताओं (Ultimate and Perfect Being) का एक साथ निर्वाह असम्भव है। किसी भी राज्य में एक साथ दो आदेश कैसे चल सकते हैं! इस प्रकार तो विश्व-व्यवस्था ही बिगड़कर रह जाती। क़ुरआन में है–

> "यदि इन दोनों (आकाश और धरती) में ईश्वर के सिवा दूसरे इष्ट-पूज्य भी होते तो दोनों की व्यवस्था बिगड़ जाती।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-21 अम्बिया, आयत-22)

मानव के लिए दो या अधिक प्रभुओं की कामना अज्ञान है।

> "क्या ईश्वर अपने बन्दों के लिए काफ़ी नहीं है!"
>
> (क़ुरआन, सूरा-39 ज़ुमर, आयत-36)

मानव को हृदय एक ही मिला है। वह एक साथ कई स्वामियों की सेवा नें असमर्थ है। भक्ति तो एक ऐसा कोमल भाव है जिसे विभिन्न खण्डों में

विभक्त नहीं किया जा सकता। भक्ति एक ही प्रभु की अपेक्षा करती है। कई प्रभुओं की धारणा और उनकी आराधना को घोरतम अन्याय के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता और वह अन्याय जो स्वयं के विरुद्ध हो। क़ुरआन की दृष्टि में तो ऐसे लोग जो एक प्रभु को छोड़कर कई प्रभुओं की उपासना करते हैं, उच्चतम पद से गिरे हुए दुर्दशाग्रस्त होते हैं—

> "और जो कोई ईश्वर के साथ बहुदेववादिता की नीति अपनाता है तो मानो वह आकाश से गिर पड़ा। फिर चाहे उसे पक्षी उचक ले जाए या हवा उसे दूरवर्ती स्थान पर फेंक दे।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-31)

बहुदेववादिता की नीति अपनानेवालों को चिन्तन-मनन से काम लेने को उभारते हुए एक जगह क़ुरआन में कहा गया है—

> "क्या तुमने देखा नहीं कि ईश्वर ही को सजदा करते हैं वे सब जो आकाशों में हैं और जो धरती में हैं, और सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पर्वत, वृक्ष, पशु और बहुत-से मनुष्य?"
>
> (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-18)

मानव-प्रकृति यदि विकृत न हो, तो वह अनेकेश्वरवाद की अपेक्षा एकेश्वरवाद को पसन्द करेगी। इस बात को क़ुरआन एक मिसाल से समझाता है—

> "अल्लाह एक मिसाल देता है। एक व्यक्ति तो वह है, जिसके मालिक होने में बहुत-से दुःशील स्वामी साझी हैं जो उसे अपनी-अपनी ओर खींचते हैं और दूसरा व्यक्ति वह है जो पूरा-का-पूरा एक ही व्यक्ति का दास है। क्या इन दोनों का हाल एक जैसा हो सकता है? सारी प्रशंसा अल्लाह ही के लिए है, किन्तु उनमें से अधिकांश लोग नहीं जानते।" (क़ुरआन, सूरा-39 जुमर, आयत-29)

क़ुरआन बताना चाहता है कि आराम और चैन एकेश्वरवाद में है। बहुत से आराध्यों और देवों की दासता से सुख और हृदय की शान्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। सीधा और सच्चा धर्म तो यही है कि मनुष्य एक ईश्वर को

अपना आराध्य और प्रभु मानकर उसकी आराधना और सेवा में लग जाए। किसी अन्य को वह स्थान कदापि न दे जो ईश्वर का है। एक ईश्वर की दासता और सेवा ही मानव के लिए श्रेय भी है और प्रेय भी। ईश्वर के अतिरिक्त कुछ और उपास्य गढ़ लेना यही नहीं कि ईश्वर के अधिकार में हस्तक्षेप है बल्कि यह स्वयं अपनी प्रतिष्ठा के भी प्रतिकूल है। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने क़ैदख़ाने में जो भाषण दिया था उसमें इस तथ्य को विशेष रूप से सामने लाया गया है कि यह कृतज्ञता की नहीं कृतघ्नता की नीति होगी कि मानव ईश्वर का यह आभार स्वीकार न करे कि उसने मनुष्य को केवल अपना दास बनाया है, अपने सिवा किसी अन्य की बन्दगी के लिए उसे नहीं पैदा किया है। यह ईश्वर का महान उपकार है कि उसने हमारे मस्तक को अपने अतिरिक्त दूसरों के आगे झुकने से बचा लिया। अब यदि कोई ईश्वर के इस विशेष उपकार को न मानकर दूसरों को ईश्वरीय पद पर आसीन करना चाहता है तो वह स्वयं अपने को अधमता के कुएँ में गिरा रहा है। इबराहीम, इसहाक, याक़ूब इतिहास में ऐसे महान व्यक्तित्व हुए हैं जो हर परिस्थिति में एकेश्वरवाद पर अटल रहे। उन्हें ईश्वर का मार्गदर्शन भी मिला। यूसुफ़ (अलैहि॰) भी एक ऐसे महान् व्यक्तित्व हुए हैं, जो एकेश्वरवाद की प्रतिमूर्ति हैं। एक बार उन पर मिथ्यारोप लगाकर जेल में डाल दिया गया। कहते हैं कि गुलाब का फूल हर जगह ख़ुशबू फैलाता है। अतः उन्होंने वहाँ भी अपनी महानता और सुआचरण का पुष्प खिलाया। अपने क़ैदी साथियों को सत्य पर लाने के लिए उपदेश दिया। इसका एक अंश क़ुरआन में उद्धृत किया गया है। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) अपने साथियों से कहते हैं—

> "मैंने तो उन लोगों का तरीक़ा छोड़कर जो ईश्वर को नहीं मानते और जो आख़िरत (परलोक) का इनकार करते हैं, अपने पूर्वज इबराहीम, इसहाक़ और याक़ूब का तरीक़ा अपनाया है। हमसे यह नहीं हो सकता कि हम ईश्वर के साथ किसी चीज़ को साझी ठहराएँ। यह हमपर और लोगों पर ईश्वर का अनुग्रह है। किन्तु अधिकतर लोग आभार नहीं प्रकट करते। ऐ कारागार के मेरे साथियो! क्या अलग-अलग बहुत-से रब अच्छे हैं या एक अकेला

ईश्वर जिसका प्रभुत्व सब पर है? तुम उसके सिवा जिनकी भी बन्दगी करते हो वे तो बस निरे नाम हैं जो तुमने रख छोड़े हैं और तुम्हारे बाप-दादा ने। उनके लिए ईश्वर ने कोई प्रमाण नहीं उतारा। सत्ता और अधिकार तो बस ईश्वर का है। उसने आदेश दिया है कि उसके सिवा किसी की बन्दगी न करो। यही सीधा, सच्चा धर्म है, किन्तु अधिकतर लोग नहीं जानते।"

(क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-37-40)

क़ुरआन ईश्वर के सम्बन्ध में स्वतः सूचित करता है–

"ईश्वर कि जिसके सिवा कोई पूज्य-प्रभु नहीं, वह जीवन्त-सत्ता है, सबको सम्भालने और क़ायम रखनेवाला है, उसे न ऊँघ लगती है और न निद्रा। जो कुछ आकाशों में है और जो कुछ धरती में है सब उसी का है। कौन है जो उसके समक्ष उसकी अनुमति के बिना सिफ़ारिश कर सके? जो कुछ उनके सामने है और जो कुछ उनके पीछे है वह सब जानता है और उसके ज्ञान में से किसी चीज़ पर हावी नहीं हो सकते सिवाय उसके जितना वह चाहे। उसकी कुर्सी (प्रभुता) आकाशों और धरती को व्याप्त है और उनकी सुरक्षा उसके लिए तनिक भी भारी नहीं और वह उच्च, महान् है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-255)

"कह दो : वह ईश्वर यकता (अद्वितीय, अनुपम) है। ईश्वर सबसे निरपेक्ष (और सर्वाधार) है। न वह जनिता है और न जन्य (अर्थात् न वह किसी का बाप है और न बेटा) और कोई नहीं जो उसका समकक्ष हो।" (क़ुरआन, सूरा-112 इख़लास, आयत-1-4)

ईश्वर नित्य है। वह काल और समय की परिधि से परे है। ईश्वर के प्रति यह प्रश्न सिरे से उठता ही नहीं कि उसका रचयिता कौन है और वह कब से है। कारण यह कि "कब" का सम्बन्ध समय से है और ईश्वर समय से परे (Beyond the Time) है। उसके लिए किसी पिता या स्रष्टा की कल्पना भी मात्र अज्ञान है।

क़ुरआन के अतिरिक्त अन्य धर्म-ग्रन्थों की गवाही

क़ुरआन ईश्वरीय सन्देश के रूप में हमारे सामने आता है, साथ ही वह यह भी कहता है कि ईश्वरीय सन्देश दुनिया में कोई पहली बार नहीं आया है, बल्कि इससे पहले भी ईश्वर का सन्देश विभिन्न काल एवं विभिन्न देशों में आ चुका है। भविष्य के लिए वह यह विश्वास दिलाता है कि ईश्वर इस सन्देश की रक्षा करेगा और इसे विनष्ट होने से बचाएगा। रसूलों के आने का सिलसिला यह कहकर बन्द कर दिया गया कि मुहम्मद (सल्ल॰), जो ईश्वरीय विधान मानव-जाति के लिए लेकर आए हैं, वह सर्वमुखी, सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। अतः मुहम्मद (सल्ल॰) अब अन्तिम ईश-सन्देष्टा यानी रसूलों के समापक हैं।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि जब क़ुरआन का दावा है कि ईश्वरीय सन्देश उससे पहले भी मानव-जाति के पास आया है, तो क्या उसके कुछ अवशेष चिह्न संसार में मिलते हैं? मैं यहाँ इसी प्रश्न का उत्तर देना चाहता हूँ। समय में कितने ही परिवर्तन आए, धर्म के स्वरूप को कितनी ही बार विकृत किया गया, किन्तु सच्चाई के समस्त चिह्नों को मिटाया नहीं जा सका। हमें इसके प्रत्यक्ष चिह्न मिलते हैं जो यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि क़ुरआन का यह दावा सही है कि संसार को हमेशा सत्य से अवगत कराया जाता रहा है। ईश्वर ने मानवों को भटकने के लिए नहीं छोड़ा। कितने ही पैग़म्बरों का उल्लेख स्पष्ट रूप से क़ुरआन ने स्वयं किया है। जिन पैग़म्बरों का उल्लेख क़ुरआन ने किया है वे कोई काल्पनिक चरित्र नहीं हैं, बल्कि वे धर्म-इतिहास की प्रसिद्ध विभूतियाँ हैं जिनके व्यक्तित्व की गहरी छाप मानव-हृदय पर पाई जाती है। यही हाल क़ुरआन की मूल शिक्षाओं का भी है। क़ुरआन की मूल शिक्षाओं को सामने रखकर जब हम प्राचीन धर्मों का अध्ययन करते हैं तो उनके स्पष्ट चिह्न भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। जिससे यह सिद्ध होता है कि क़ुरआन की आवाज़ नई नहीं है। क़ुरआन की शिक्षाओं की पुष्टि के लिए बहुत कुछ सामग्री संसार के धार्मिक अवशेषों से जुटाई जा सकती है। हम विस्तार में न जाकर क़ुरआन की एकेश्वरवाद की शिक्षा को सामने रखते हुए यहाँ कुछ ऐसे साक्ष्य

प्रस्तुत करते हैं जिनसे अनुमान किया जा सकता है कि एकेश्वरवाद की शिक्षा नवीन नहीं है, बल्कि क़ुरआन का यह मत सत्य है कि इस शिक्षा का पहले भी प्रचार एवं प्रसार हो चुका है।

वेदों की गवाही

वेदों को ही ले लीजिए जो अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ हैं। वेद भारतीय पुरातन या सनातन धर्म के मूलाधार हैं। वेद को भारत में धर्म का प्रमाण माना जाता है। वे चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। एकेश्वरवाद की पुष्टि वेदों से भी होती है। उदाहरणतः—

एको विश्वस्य भुवनस्य राजा। (ऋग्वेद 6/36/4)

"सम्पूर्ण भुवनों का तू एक ही अधिपति है।"

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।।
(अथर्व॰ 2/2/1)

"जो दिव्य पृथिव्यादी का धारक देव, भुवनों का एक ही स्वामी जगत् में यही एक नमस्कार करने और स्तुति करने योग्य है।"

नत्वावां२ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जानिष्यते।

अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे।। (यजुर्वेद 27/36)

"हे पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त सब दुखों के विनाशक परमेश्वर! वेगवाले उत्तमवाणी बोलते हुए अपने को शीघ्रता चाहते हुए हम लोग आपकी स्तुति करते हैं। क्योंकि कोई अन्य आपके तुल्य शुद्ध, न कोई पृथ्वी पर प्रसिद्ध, न कोई उत्पन्न हुआ और न होगा। अतः आप ही हमारे उपास्य देव हैं।"

अर्थात् न कोई परमेश्वर के तुल्य शुद्ध हुआ, न होगा और न है। इसी से सब मनुष्यों को चाहिए कि उसको छोड़कर अन्य किसी की उपासना उसके स्थान पर कदापि न करें। यही कर्म इस लोक-परलोक में आनन्ददायक जानें।[1]

---

1. यजुर्वेद भाषा भाष्य, महर्षि दयानन्द सरस्वती से साभार।

ईशा वास्यमिंद सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।। (यजुर्वेद 40/1)

"इस सृष्टि में जो कुछ भी चर, प्राणी, जंगम संसार या गतिशील है, वह सब सर्वशक्तिमान परमेश्वर से व्याप्त है।"

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(ऋग्वेद 1/164/46)

"एक सत् वस्तु है, उसी को ज्ञानी लोग अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं। उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं। और वह दिव्य सुपर्ण और गरुत्मान है।"

अर्थात् यद्यपि परमात्मा एक ही सत् तत्व है, किन्तु उसका वर्णन ज्ञानीजन अनेक तरह से करते हैं। ऐश्वर्यवान होने से वही इन्द्र, हितकारी होने से वही मित्र, श्रेष्ठ होने से वरुण, प्रकाशक होने से अग्नि, उत्तम होने से सुपर्ण गरुत्मान है।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
य एतं देवमेकवृतं वेद।।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।।
य एतं देवमेकवृतं वेद
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।
स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणिति यच्च न।
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव।
सर्वे अस्मिन् देवा एक वृतो भवन्ति।

(अथर्ववेद 13/4/16-21)

"वह (अकेला वर्तमान) न दूसरा न तीसरा, न चौथा ही कहा जाता है। वह न पाँचवाँ, न छठा, न सातवाँ ही कहा जाता है। वह न आठवाँ, न नवाँ, न दसवाँ ही कहा जाता है। वह (परमेश्वर) सब (जगत्) के हित के लिए (उस सबको) विविध प्रकार देखता है जो श्वास लेता है और जो नहीं (श्वास लेता है)। यह सामर्थ्य उस

(परमात्मा) को निश्चय करके प्राप्त है, वह आप एक अकेला वर्तमान एक ही है। इस(परमात्मा) में सब चलनेवाले (पृथ्वी आदि लोक) एक (परमात्मा) में वर्तमान रहते हैं।"

अर्थात् परमेश्वर एक है, उससे भिन्न कोई भी दूसरा, तीसरा आदि ईश्वर नहीं है, सब लोग उसी की उपासना करें। वेद ने एक ईश्वर का निश्चय कराके दूसरे ईश्वर होने का सर्वथा निषेध किया है।[1]

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः। (यजुर्वेद 32/1)

"हे मनुष्यो! वह (परमेश्वर) सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सनातन, अनादि सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, न्यायकारी, दयालु, जगत् का स्रष्टा, धारणकर्ता और सबका अन्तर्यामी ही ज्ञान-स्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि, वह प्रलय समय सबको ग्रहण करने से आदित्य, वह अनन्त बलवान और सबका धर्ता होने से वायु, वह आनन्दस्वरूप और आनन्दकारक होने से चन्द्रमा, वही शीघ्रकारी वा शुद्ध-भाव से शुक्र, वह महान् होने से ब्रह्म, वह सर्वत्र व्यापक होने से 'आप' और वह सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है, ऐसा तुम लोग जानो।[2]

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।

यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान् त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्।।

(ऋग्वेद 6/22/1)

"हे मनुष्यो! जो मनुष्यों के मध्य में अकेला ही स्तुति करने और ग्रहण करने योग्य है, उस ऐश्वर्य को देनेवाले का इन वाणियों से मैं सब प्रकार से सत्कार करता हूँ और जो श्रेष्ठ बल आदि बहुत प्रिय गुणों से युक्त तीनों कालों में अबाध्य सर्वत्र स्थित बहुतों को

1. अथर्ववेद भाष्य, पृ. 641, क्षेमकरणदास त्रिवेदी।

2. अनुवाद : महर्षि दयानन्द सरस्वती।

रचनेवाला अत्यन्त बल से युक्त हुआ स्वामी के सदृश आचरण करता है, उसका सत्कार करता हूँ उस परमेश्वर का आप लोग सत्कार करिए।"

अर्थात् हे मनुष्यो! जो अद्वितीय् सबसे उत्तम, सच्चिदानन्दस्वरूप, न्यायकारी और सबका स्वामी है, उसका त्याग करके अन्य की उपासना कभी न करो।[1]

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वात्ति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

(यजुर्वेद 31/18)

"मैं उस बड़े भारी ब्रह्माण्ड में व्यापक परमेश्वर को सूर्य के समान तेजस्वी और अन्धकार प्रकृति से दूर, भिन्न जानता हूँ उसको ही जानकर जीव मृत्यु को पार कर जाता है। दूसरा कोई मार्ग अभीष्ट मोक्ष प्राप्ति के लिए नहीं है।"

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्।।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धन्यन्न परः किं चनास।।

(ऋग्वेद 10/129/1-2)

"प्रलयावस्था में न सत् था न असत् था, उस समय न लोक था और आकाश से परे जो कुछ है वह भी नहीं था। उस समय सबको ढकनेवाला क्या था? कहाँ किसका आश्रय था? अगाध और गम्भीर जल क्या था? उस समय न मृत्यु थी, न अमृत था। सूर्य-चन्द्र के अभाव से रात्रि और दिन का ज्ञान भी नहीं था। उस वायु से रहित दशा में एक अकेला वह ही ब्रह्म अपनी शक्ति के साथ प्राण ले रहा था। उससे परे या भिन्न और कोई वस्तु नहीं

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती।

थी।"

अर्थात्, प्रलयावस्था में न पंचभूतादि सत् पदार्थ ही थे, न कुछ अभावरूप असत् ही था, न आकाश था, न लोक ही थे। फिर किसने किसको ढका? कैसे ढका? किससे ढका? यह सब अनिश्चित ही था। (उस काल में) मृत्यु, अमृत भी कुछ नहीं था, और सूर्य-चन्द्रमा के न होने से दिन-रात का भेद भी मालूम नहीं होता था। मगर एक ब्रह्म ही ऐसी दशा में विद्यमान था।[1]

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।।

(ऋग्वेद 10/121/1)

"इस सृष्टि के निर्माण होने के पहले हिरण्यगर्भ परमात्मा विद्यमान था। वही उत्पन्न सब जगत् का एकमात्र-अद्वितीय स्वामी है।"[2]

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि वेदों में एकेश्वरवाद की शिक्षा पाई जाती है, अर्थात् वेद एकेश्वरवाद के समर्थक हैं। यद्यपि वेदों में अनेक देवताओं के नाम आएँ हैं जो वस्तुतः एक ही देवता के गुणबोधक शब्द हैं। इस तथ्य की पुष्टि स्वयं वेद (ऋग्वेद 1/164/46, अथर्ववेद 9/10/28, निरुक्ति 7/18,14/1, बृहद्देवता 4/42) करते हैं। जहाँ कहा गया कि 'एक ही सत् स्वरूप परमात्मा को ज्ञानीजन अनेक प्रकार से बोलते हैं।' ईश्वर विषयक वैदिक शिक्षा एकेश्वरवाद की ही है। इस प्रकार का विचार वर्तमान युग के विद्वानों ने भी प्रकट किया है। स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं—

"वेद वे वास्तविक ईश-प्रेरित ग्रन्थ हैं जिनमें एक ईश्वर का ज्ञान प्रदान किया गया है।"[3]

वेदों में एकेश्वरवाद का स्पष्ट उल्लेख पाकर ही डब्ल्यू॰डी॰ ब्राउन (W. D. Brown) ने अपनी पुस्तक Superiority of the Vedic Religion में लिखा है—

---

1. ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, पद्मभूषण ब्रह्मर्षि पं॰ श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
2. उपर्युक्त
3. देखें स्वामी विवेकानन्द के पत्र (मद्रास के लोगों के नाम)।

It (Vedic Religion) recognises but one God.

"वैदिक धर्म एकेश्वरवाद का ही प्रतिपादन करता है।"

August Wilhelm Schlegel (1767 - 1845) ने कहा है–

"इसका इनकार नहीं किया जा सकता कि अत्यन्त आरम्भिक काल के भारतियों को वास्तविक ईश्वर का ज्ञान प्राप्त था।"

एर्नेस्ट वुड (Ernest Wood)[1] 1883-1965 ने लिखा है–

> "हिन्दुओं के मत में केवल एक ही परमेश्वर है। प्राचीनकाल में ऋग्वेद में यह बात कही जा चुकी थी–'विद्वान लोग उसी एक सत्ता को अनेक नामों से पुकारते हैं।"[2]

बाइबल की गवाही

बाइबल कई प्राचीन धर्म-पुस्तकों का संग्रह है। इन पुस्तकों की मौलिकता विभिन्न पहलुओं से संदिग्ध है; क्योंकि इनमें तरह-तरह के प्रक्षेप हुए हैं। फिर भी एक ईश्वर की धारणा की पुष्टि के लिए आज भी इनमें बहुत कुछ सामग्री पाई जाती है। उदाहरणस्वरूप कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं–

> "परमेश्वर मैं ही हूँ, दूसरा कोई नहीं, मैं ही परमेश्वर हूँ और मेरे तुल्य कोई भी नहीं है।" (यशा॰ 46/9)

> "उस (प्रभु का) राज्य पूरी सृष्टि पर है।" (भज॰ 103/19)

---

1. एर्नेस्ट वुड (Ernest wood) एक सुविख्यात एवं श्रेष्ठ अंग्रेज़ी योगी, आध्यात्मवादी और संस्कृत के विद्वान हुए हैं। उनका जन्म 18 अगस्त सन् 1883 में इंग्लैंड के शहर मैंचेस्टर (Manchester) में हुआ। उनकी शिक्षा मैंचेस्टर म्यूनिसिपल कॉलेज (Manchester Municipal College of Technology) में हुई। यहाँ उन्होंने रसायन विज्ञान (Chemistry), भौतिक विज्ञान (Physics) और प्राणीविज्ञान (Geology) की शिक्षा प्राप्त की। क्योंकि वे बुद्ध धर्म और योग के प्रति अधिक रुचि रखते थे, इसी लिए उन्होंने संस्कृत पढ़नी शुरू की और संस्कृत एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में परम कुशलता प्राप्त की। उन्होंने अध्यात्म, ध्यान और ईश्वरीय धारणा पर बड़ी महत्वपूर्ण पुस्तकें भी लिखीं हैं। –संपादक
2. An Englishman defends Mother India, p. 128

"हे इस्राएल (इसराईल), सुन! यहोवा (प्रभुवर) हमारा परमेश्वर है, यहोवा एक ही है। तू अपने परमेश्वर यहोवा से अपने सारे मन और सारे जीव और सारी शक्ति के साथ प्रेम रखना।" (व्यव॰ 6/4-5)

बाइबल की पुस्तक मरकुस में भी यही बात कही गई है—

"हे इस्राएल (इसराईल), सुन! प्रभु हमारा परमेश्वर एक ही प्रभु है। और तू प्रभु अपने परमेश्वर से अपने सारे मन से, और अपने सारे प्राण से, और अपनी सारी बुद्धि से और अपनी सारी शक्ति से प्रेम रखना।" (12/29-30)

"(हे प्रभु!) तू महान् और आश्चर्यकर्म करनेवाला है, केवल तू ही परमेश्वर है।" (भज॰ 86/10)

"पृथ्वी के सब राज्यों के ऊपर केवल तू ही परमेश्वर है, आकाश और पृथ्वी को तू ने ही बनाया है।" (यशा॰37/16)

"और अनन्त जीवन यह है कि वे तुझ एकमात्र सच्चे परमेश्वर को और यीशु मसीह को, जिसे तूने भेजा है, जाने।" (यूहन्ना 17/3)

"जो यह चाहता है कि सब मनुष्यों का उद्धार हो, और वे सत्य को भली-भाँति पहचान लें। क्योंकि परमेश्वर एक ही है और परमेश्वर और मनुष्यों के बीच में भी एक ही बिचवाई (मध्यस्थ) है, अर्थात् मसीह यीशु जो मनुष्य है।" (तीमुथियुस 2/4-5)

"हे पृथ्वी के दूर-दूर के देश के रहनेवालो, तुम मेरी ओर फिरो और उद्धार पाओ! क्योंकि मैं ही परमेश्वर हूँ और दूसरा कोई और नहीं है।" (यशा॰ 45/22)

तू प्रभु अपने परमेश्वर को प्रणाम कर और केवल उसी की उपासना कर।" (मत्ती 4/10)

ईश्वर का सत्य-स्वरूप

ईश्वर हमारे तन का भी ईश्वर है और हमारी आत्मा का भी। वह स्वयंभू, सर्वशक्तिमान और दयावान् है। उस जैसा कोई नहीं उसके यहाँ वक़्त का गुज़र नहीं अर्थात् वह समय से परे (Beyond the Time) और अपने में पूर्ण है। किसी पहलू से भी वह किसी अन्य पर आश्रित नहीं।

इसके साथ वह हमारा ईष्ट भी है। वही जीवन का एकमात्र आधार है। उसमें वे सारी विशेषताएँ पूर्णतः पाई जाती हैं जो एक पूज्य-प्रभु और प्रिय के लिए अभीष्ट हो सकती हैं। हमारी आत्मिक माँगें उसी के द्वारा पूर्ण हो सकती हैं। हमारे मन में पाए जानेवाले निर्मल और कोमलतम भाव उसी के लिए हैं। हमारी उपासनाएँ, हमारी आस्था और श्रद्धा उसी के लिए होनी चाहिएँ। वह हमारा उपास्य ही नहीं वरन् वह हमारा प्रेमपात्र भी है।

ईश्वर का रहस्यमय व्यक्तित्व

ईश्वर की कल्पना

ईश्वरीय सत्ता के विषय में हमारी धारणा क्या हो, यह विवाद का विषय रहा है। किसी ने ईश्वर को निर्गुण कहकर उसकी उपासना का निश्चय किया, किसी ने उसे सगुण उपास्य माना। मानव की यह सदैव प्रबल कामना रही है कि वर्तमान जीवन में यदि ईश्वर को प्रत्यक्ष रूप में वह नहीं देख सकता, तो कम-से-कम ईश्वर के व्यक्तित्व एवं स्वरूप की कल्पना करने में उसे सफलता प्राप्त हो। ईश्वर के विषय में यह मानना पड़ता है कि वह सर्वशक्तिमान् है। उसके सम्बन्ध में किसी अपूर्णता की कल्पना नहीं की जा सकती। उसमें किसी प्रकार का दोष नहीं पाया जा सकता। संसार में जहाँ कहीं और जिस रूप में ज्ञान, शिव, शुभ एवं सुन्दर दीख पड़ता है उसका वास्तविक कारण ईश्वर ही है। सीधी-सी बात है कि किसी बर्तन में जो कुछ होगा वही उससे छलकेगा। संसार रूपी दर्पण में सामर्थ्य, ज्ञान और सौन्दर्य का जो प्रतिबिम्ब दिखाई देता है उसे निराधार तो नहीं कहा जा सकता। फिर ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा कौन है जिसे इस विशाल जगत् का आधार कहा जा सके? निस्सन्देह गहन चिन्तन-मनन से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि इस जगत् का आधार ईश्वर है, जो सर्वशक्तिमान और प्रभुत्वशाली है। वह सुनता और देखता है। हमें सुनने, देखने और जानने की शक्ति उसी से प्राप्त हुई है। इसका आधार अन्धी, बहरी, अल्पज्ञ और निर्जीव वस्तु नहीं हो सकती। हम सुनते और देखते हैं, यद्यपि हमारा यह देखना-सुनना एक सीमा के भीतर ही होता है, फिर यह कैसे सम्भव है कि हमें तो देखने-सुनने का सामर्थ्य प्राप्त हो और ईश्वर को यह सामर्थ्य प्राप्त न हो! हममें इरादा और संकल्प की शक्ति पाई जाती है, फिर ईश्वर को इस गुण से रहित कैसे कह सकते हैं! कहने का आशय यह कि ईश्वर में वे सभी गुण होने चाहिएँ जिनके अभाव में उसे पूर्ण सत्ता कहना सम्भव न हो सके। हमारी देखने-सुनने की शक्ति अत्यन्त सीमित है, किन्तु ईश्वर की देखने-सुनने की शक्ति

असीम है । इसी प्रकार हमारा ज्ञान और चेतन-शक्ति भी सीमित है, किन्तु ईश्वर तो किसी पहलू से भी सीमाबद्ध नहीं है । हम भी अपना अस्तित्व रखते हैं, किन्तु ईश्वरीय अस्तित्व अनन्त, नित्य एवं स्वयंभू (Self-existent) है। वह प्रत्येक बाधाओं, त्रुटियों और न्यूनताओं से सर्वथा मुक्त है। बल्कि अस्तित्व तो वास्तव में उसी का है। हमारा और जगत् का अस्तित्व तो उसी परम सत्ता के अधीन और उसकी दया-दृष्टि पर निर्भर करता है। यदि वह अपनी निगाह फेर ले तो हमारा अस्तित्व ही शेष न रहे।

ईश्वर हमारा स्रष्टा है और हम उसकी सृष्टि (रचना) हैं। जिस प्रकार आप कल्पना-शक्ति से अपने मन में किसी भी वृक्ष, भवन आदि का निर्माण कर सकते हैं। वे वृक्ष, भवन आदि अपने अस्तित्व के लिए प्रतिक्षण आप पर आश्रित होंगे। जिस समय भी आप उनकी ओर से अपना ध्यान हटा लेंगे वे विलुप्त होकर रह जाएँगे। इस कल्पना में हम यह भी देखते हैं कि आप और आपकी निर्मित चीज़ें एक साथ रहकर भी एक-दूसरे से भिन्न हैं। आप और आपकी निर्मित वस्तुओं में घनिष्ठ सामीप्य के बावजूद अत्यन्त दूरी भी है। इस उदाहरण के द्वारा सृष्टि और स्रष्टा के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में यह अनुमान किया जा सकता है कि यह सम्बन्ध किस प्रकार का होता है।

यहाँ आन्री पांकरे (Henri Poincare, 1854-1912) और रेने देकार्त (Rene Descartes, 1596-1650 ई॰) आदि की यह बात भी स्मरण हो जाती है कि किसी वस्तु के अस्तित्व का अर्थ है मात्र किसी के ख़याल में पाया जाना।

चोटी के वैज्ञानिक 'सर आर्थर एडिंगटन' (Sir Arthur Eddington, 1882-1944) के विचार में तो चित्त (Mind) हमारे अनुभव की सबसे पहली और सबसे प्रत्यक्ष (Direct) वस्तु है, इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है वह मात्र निष्कर्षण और कल्पना है।[1] सर जेम्स जींज़ (Sir James Jeans) के मतानुसार ब्रह्माण्ड एक महान सृष्टिकर्ता के चित्त (Mind) की रचना ही नहीं,

---

1. देखें, Modern Belief

बल्कि वास्तव में यह नाम है उस चित्त के मात्र कल्पनाओं और विचारों का।

जेम्स जींस (1877-1946 ई॰) विज्ञान के माध्यम से जिस निष्कर्ष तक पहुँचे हैं यह वही निष्कर्ष है जिस तक बर्कले दार्शनिक चिन्तन के मार्ग से पहुँचा था। उसने भी कहा था कि किसी वस्तु का चित्त से बाहर कोई अस्तित्व नहीं जब तक चित्त को उसकी अनुभूति न हो। दूसरे शब्दों में जब तक वह हमारे या हमारी तरह किसी अन्य के चित्त में न पाई जाए या फिर जब तक किसी शाश्वत आत्मा (Eternal Spirit) में मौजूद या उसपर आश्रित न हो, उसका सिरे से कोई अस्तित्व ही सम्भव नहीं।

जैम्स जींस (James Jeans) के मतानुसार बाह्य जगत् जो हम सबके लिए समान रूप से पाया जाता है वह एक ऐसे विराट चित्त के विचार (Thought) का नाम हो सकता है जिससे हम सम्पर्क (Contact) रखते हैं या उसका अंश (Parts) हैं। (Modern Belief)

हम जिसे स्थान या स्पेस (Space) कहते हैं और समझते हैं कि हर चीज़ किसी स्थान या स्पेस पर (Space) होती है। लेकिन स्पेस क्या है? स्पेस को टाइम (Time) यानी समय की तरह एक सापेक्ष (Relative) चीज़ समझा गया है। कुछ विचारकों का कहना है कि स्पेस केवल अन्तस (Mind) में होता है। उसका कोई बाह्य अस्तित्व नहीं है। स्पेस की व्याख्या कुछ विचारकों ने इस प्रकार की है कि स्पेस अनुभूति सम्बन्धी तत्व है, इसके बिना अनुभूति नहीं होती। अनुभूति से अलग इसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है।

ईश्वर सभी यथोचित्त गुणों से सम्पन्न है। कौन से अभीष्ट गुण हैं जो उसमें नहीं हैं! यदि वह गुणवान् न होता तो संसार में किसी गुण की झलक भी न दीख पड़ती। उसके गुण दोषरहित हैं। पूज्य एवं आराध्य होने का मात्र अधिकारी वही है। वही है जिसके आगे झुका जाए। प्रत्येक स्थिति में जिस पर भरोसा किया जाए। जिसके लिए मन भी विकल हो और बुद्धि को भी हर दिशा में जिसकी खोज हो। जिसके आदेश ऐसे अटल क़ानून हों, जिनके पालन में ही मानव-कल्याण हो। जिससे हमारी आत्मिक आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। जिसे हम अपने समग्र मन और सारी बुद्धि, विवेक और शक्ति से प्रेम कर सकें, जिसे हम अपने को पूर्णतः समर्पित कर सकें। जिसकी ओर

हम सदैव विनय एवं समर्पण भाव से देख सकें। जो स्वामी और शासक ही न हो, बल्कि हमारे प्रेम का आश्रय भी बन सकता हो। जिसका नाम हमें उसकी महानता के आगे झुका दे। जिसके मात्र एहसास से हमारी सारी कामनाएँ पूरी होती हों। जिसमें हमारे जीवन और जीवन की समस्त गतिविधियों का उद्देश्य निहित हो। जिसके द्वारा जीवन और जगत् की व्याख्या होती हो। जो जीवन को आभामय और अमर बना सके। जिसे पाकर कुछ पाना शेष न रहे। जिसे न जान पाना विनाश हो। ऐसा व्यक्तित्व एक ईश्वर का ही हो सकता है। क़ुरआन का सन्देश यही है और वह सम्पूर्ण मानवता के समक्ष इसी सच्चाई को रखता है। हम यहाँ क़ुरआन से ईश्वर के कुछ ऐसे गुणों की चर्चा करेंगे जिससे उपरोक्त बातों की पुष्टि होती है।

> "पूरब और पश्चिम सब ईश्वर के हैं। जिस ओर भी तुम रुख करो, उसी ओर ईश्वर का रुख है। निस्सन्देह ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वज्ञ है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-115)

> "तुम्हारा पूज्य-प्रभु एक ही पूज्य-प्रभु है; उस करुणामय और दयावान के अतिरिक्त कोई और पूज्य-प्रभु नहीं है।"
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-163)

> "ईश्वर, वह जीवन्त नित्य सत्ता, जो जगत्-व्यवस्था को सम्भाले हुए है, वास्तव में उसके सिवा कोई ईश-प्रभु नहीं है।"
> (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-2)

अर्थात् ईश्वर अमर (Immortal) और सज़ीव (Alive) है। जीवन का मूल स्रोत वही है। फिर वह अपने अस्तित्व में किसी पर आश्रित नहीं। वह ख़ुद से क़ायम (Self subsisting) है। सारी सृष्टि को स्थापित करने और स्थिर रखनेवाला है।

> "उस प्रभुत्वशाली, तत्त्वदर्शी के अतिरिक्त कोई पूज्य-प्रभु नहीं है।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-6)

> "निस्सन्देह ईश्वर को हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है।"
> (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-77)

"बड़ी बरकतवाला है वह, जिसने यह 'फ़ुरक़ान' (अर्थात् सत्य और असत्य का अन्तर स्पष्ट करनेवाली किताब) अपने बन्दे पर अवतरित किया, ताकि वह सारे संसार के लिए सावधान करनेवाला हो। वह जिसका राज्य है आकाशों और धरती पर और उसने न तो किसी को अपना बेटा बनाया और न राज्य में उसका कोई साझीदार है। उसने हर चीज़ को पैदा किया; फिर उसे ठीक अन्दाज़े पर रखा।"

(क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-1,2)

ईश्वर ने हर चीज़ को पैदा ही नहीं किया बल्कि प्रत्येक वस्तु के लिए रंग-रूप, शक्ति, गुण, विशेषताएँ और विकास की सीमाएँ आदि सभी निश्चित की हैं। प्रत्येक चीज़ अपनी परिधि में कार्यरत रहे, इसके लिए ईश्वर ने संसार में सभी साधन और कारण-समूह जुटा दिए हैं।

"अतः महिमा है उसकी जिसके हाथ में हर चीज़ का पूरा अधिकार है। और उसी की ओर तुम लौटकर जाओगे।"

(क़ुरआन सूरा-36 यासीन, आयत-83)

"ईश्वर का महिमागान किया हर उस चीज़ ने जो आकाशों और धरती में है; और वह प्रभुत्वशाली, तत्त्वदर्शी है। आकाशों और धरती की बादशाही उसी की है। वही जीवन प्रदान करता है और मृत्यु देता है और उसे हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है। वही आदि है और अन्त भी, वही व्यक्त है और अव्यक्त भी; और वह सर्वज्ञ है।" (क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-1-3)

"निस्सन्देह तुम्हारे रब (पालनकर्त्ता प्रभु) की पकड़ बड़ी सख़्त है।"

(क़ुरआन, सूरा-85 बुरूज, आयत-12)

"महिमागान करो अपने सर्वोच्च रब के नाम का, जिसने पैदा किया, फिर ठीक-ठाक किया; और जिसने निर्धारित किया, फिर मार्ग दिखाया।" (क़ुरआन, सूरा-87 आला, आयत-1-3)

"कह दो वह ईश्वर यकता (अद्वितीय एवं अनुपम) है! ईश्वर निरपेक्ष (एवं सर्वाधार) है। न वह जनिता है और न जन्य और न

कोई उसका समकक्ष है।"

(क़ुरआन, सूरा-112 इख़लास, आयत-1-4)

वह यकता है, अर्थात् वह अकेला, अतुल, अनुपमेय और अद्वय है और इसके साथ ही वह सदैव से है और सदैव रहेगा। वह नित्य है। उसके सिवा न पहले कोई ईश्वर था और न आगे होगा। उसका कोई सहजातीय नहीं। वह एक सत्ता है, वह बहुत-से अंशों का योग नहीं कि विभाजनीय हो या जिसके सामान्य रंग-रूप, अंग इत्यादि हों और वह किसी विशेष दिशा में पाया जाता और किसी जगह में रहता हो। हर प्रकार के अतिरेक से मुक्त वह एक सत्ता है। वह प्रत्येक दृष्टि से यकता है। पालनकार्य में कोई उसका सहकारी एवं सहयोगी नहीं कि किसी अन्य की सहायता लेकर वह जगत् की व्यवस्था करता हो और उसके बिना वह असहाय होकर रह जाता हो। वह सर्वसामर्थ्य और सर्वशक्तिमान है। उसके प्रभुत्व में भी कोई उसका साझीदार नहीं। वह अकेला ही ब्रह्माण्ड का स्रष्टा और जगत् का नियन्ता एवं प्रबन्धकर्त्ता है। वही सबका आश्रय और रक्षक है और वही है जो संकट में काम आ सके।

वह परम स्वतन्त्र और निरपेक्ष है, किन्तु सबका आधार और सहायक भी वही है। वही वास्तविक सहारा है जिस पर भरोसा किया जा सके। दूसरे सभी उसके मुहताज और आश्रित हैं। वे लोग भटके हुए हैं जो उसके अतिरिक्त किसी और की वन्दना करते हैं।

इसी प्रकार जब वह अनादि काल से है और उसके समान कोई नहीं तो फिर उसे किसी का पुत्र या पिता समझना एक ग़लत धारणा है। कोई नहीं जो किसी दृष्टि से उसका समकक्ष हो सके। क़ुरआन में है—

"वही ईश्वर है, आकाशों में भी और धरती में भी। वह तुम्हारी छिपी और तुम्हारी खुली सब बातों को जानता है, और जो कुछ तुम करते हो वह उससे भी अवगत है।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-3)

"तुम्हारा रब अत्यन्त क्षमाशील और दयावान है। यदि वह इनकी

(असत्यवादियों की) करतूतों पर इन्हें पकड़ना चाहता तो उनपर शीघ्र ही यातना ला देता। मगर इनके लिए वादे का एक समय निश्चित है और उससे बचकर भाग निकलने का ये कोई मार्ग न पाएँगे।" (क़ुरआन, सूरा-18 कहफ़, आयत-58)

"तुम्हारे रब ने दयालुता को अपने ऊपर अनिवार्य कर लिया है कि तुम में जो कोई नासमझी से कोई बुराई कर बैठे फिर उसके पश्चात् 'तौबा' कर ले और अपना सुधार कर ले तो वह (ईश्वर) बड़ा क्षमाशील और दयावन्त है।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-54)

"मेरे बन्दों (सेवकों) को सूचित कर दो कि मैं अत्यन्त क्षमाशील और दयावान हूँ और यह कि मेरी यातना भी अत्यन्त दुखदायिनी यातना है।" (क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, आयत-49,50)

"मेरी दयालुता हर चीज़ पर छाई हुई है।"

(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-156)

अर्थात् ईश्वर जिस ढँग से अपने राज्य-शासन को चला रहा है उसमें मौलिक स्थान उसके प्रकोप को नहीं बल्कि उसकी दयालुता को ही प्राप्त है। दयालुता ही के बल पर जगत् का कारख़ाना चल रहा है। उसका प्रकोप तो उस समय उतरता है जब लोगों का अत्याचार हद से आगे बढ़ जाता है और वे सरकशी और विद्रोह में सीमा का अतिक्रमण ही किए चले जाते हैं।

"(पैग़म्बर शुऐब ने कहा :) मेरा रब तो बड़ा दयावान, बहुत प्रेम करनेवाला है।" (क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-90)

"वही है जो आकाश में भी पूज्य है और धरती में भी पूज्य है। और वह तत्त्वदर्शी और सर्वज्ञ है।"

(क़ुरआन, सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयत-84)

"उसने (ईश्वर ने) आकाशों और धरती को सत्य के साथ पैदा किया। रात को दिन पर लपेटता है और दिन को रात पर लपेटता है, और उसने सूर्य और चन्द्रमा को वशीभूत कर रखा है। प्रत्येक

एक निश्चित समय को पूरा करने के लिए चल रहा है।"

(क़ुरआन, सूरा-39 ज़ुमर, आयत-5)

अर्थात् ईश्वर जगत् का स्रष्टा ही नहीं उसका संचालक और स्वामी भी है।

"कितने ही चलनेवाले जीवधारी हैं जो अपनी रोज़ी उठाए नहीं फिरते। ईश्वर ही उन्हें रोज़ी देता है और तुम्हें भी।"

(क़ुरआन, सूरा-29 अनकबूत, आयत-60)

पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने भी कहा है—

"यदि तुम ईश्वर पर सचमुच भरोसा रखते तो वह तुम्हें रोज़ी देता जिस तरह वह पक्षियों को देता है, वे प्रातः काल भूखे निकलते हैं तो पेट खाली होता है और संध्या को लौटते हैं तो पेट भरे हुए होते हैं।" (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी)

क़ुरआन में है—

"कहो, क्या मैं ईश्वर को छोड़कर किसी और को अपना सरपरस्त बना लूँ? उस ईश्वर को छोड़कर जो ज़मीन और आसमान का पैदा करनेवाला है और जो रोज़ी (आजीविका) देता है, रोज़ी लेता नहीं है। कहो, मुझे तो यही आदेश दिया गया है कि सबसे पहले मैं उसके आगे आज्ञापालन की भावना से झुक जाऊँ।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-14)

"ईश्वर तुम्हें किसी तंगी में नहीं डालना चाहता। अपितु वह चाहता है कि तुम्हें पवित्र करे और अपनी नेमत तुम पर पूरी कर दे, ताकि तुम कृतज्ञ बनो।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-6)

"और उनमें से अधिकतर लोग तो बस अटकल पर चलते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं कि अटकल हक़ (की आवश्यकता की पूर्ति) में कुछ काम नहीं आती।" (क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, आयत-36)

"क्या अलग-अलग बहुत से रब अच्छे हैं या अकेला ईश्वर जिसका

प्रभुत्व सबपर है?" (क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-39)

"यह सब कुछ ईश्वर की संरचना है। अब मुझे दिखाओ कि उससे हटकर जो दूसरे हैं (तुम्हारे ठहराए हुए प्रभु) उन्होंने क्या पैदा किया है!" (क़ुरआन, सूरा-31 लुक़मान, आयत-11)

"कह दो, ईश्वर को छोड़कर जिनका तुम्हें (उपास्य होने का) दावा है, उन्हें पुकारकर देखो! वे न आकाशों में कणभर चीज़ के मालिक हैं और न धरती में, और न उन (आकाशों और धरती) में उनका कोई साझा है, और न उनमें से कोई उसका सहायक है।"

(क़ुरआन, सूरा-34 सबा, आयत-22)

"हमने मनुष्य को पैदा किया है और उसके दिल में उभरनेवाले वसवसों तक को हम जानते हैं। हम उसकी गरदन की रग से भी अधिक उससे निकट हैं।" (क़ुरआन, सूरा-50 क़ाफ़, आयत-16)

"ईश्वर आकाशों और धरती का प्रकाश है।"

(कुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-35)

अर्थात् ईश्वर ही की वह महान ज्योति है जिसकी आभा से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकाशित है। सम्पूर्ण जगत् उसी से परिपूर्ण (Fulfilled) है और उसी से आलोकित हो रहा है। उसकी छवि सम्पूर्ण जग में व्याप्त है।

"वही ईश्वर है जिसके सिवा कोई पूज्य-प्रभु नहीं, परोक्ष एवं प्रत्यक्ष का ज्ञाता है। वह अत्यन्त कृपाशील और दयावान है। वही ईश्वर है जिसके सिवा कोई पूज्य नहीं। वह सर्वशासक है, अत्यन्त पवित्र, शान्तिस्वरूप, शरणदाता, संरक्षक, प्रभुत्वशाली, प्रभावशाली, अत्यन्त महान्। ईश्वर की महिमा के प्रतिकूल है जो ये (उसका) साझीदार ठहराते हैं। वही ईश्वर है, जो संरचना का प्रारूपक है, अस्तित्व प्रदान करनेवाला, रूप देनेवाला है। उसी के लिए अच्छे नाम हैं। जो वस्तु भी आकाशों और धरती में है उसी का महिमागान कर रही है, और वह प्रभुत्वशाली और तत्वदर्शी है।"

(कुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-22-24)

"और जो कुछ आकाशों में है और जो कुछ धरती में सब ईश्वर ही का है, और सारे मामले ईश्वर ही की ओर पलटते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-109)

"और ईश्वर ही के लिए है बादशाही आकाशों और धरती की और जो कुछ उनके बीच है उसकी भी, और जाना भी उसी की ओर है।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-18)

"ईश्वर ही सत्य है।" (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-6)

"बड़ी बरकतवाला है तेरे प्रतापवान एवं उदार रब का नाम।"

(क़ुरआन, सूरा-55 रहमान, आयत-78)

"निस्सन्देह मेरा रब निकट है, प्रार्थनाओं को स्वीकार करनेवाला भी।" (क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-61)

निर्गुण होने की बात

इस तरह क़ुरआन की कितनी ही आयतें पेश की जा सकती हैं जिनसे प्रत्यक्ष रूप से मालूम होता है कि ईश्वर कोई ऐसी सत्ता नहीं जिसके प्रति सकारात्मक पक्ष में हम कुछ न कह सकें। केवल नकारात्मक पहलू अपनाने से मन को तुष्टि कैसे प्राप्त हो सकती है! मानव-आत्मा तो एक ऐसे प्रभु की इच्छा करती है, जिसका केवल उसे भय ही न हो बल्कि वह उस प्रभु की ओर आकर्षित भी हो सके और प्रेमासक्ति भी कर सके। इसके लिए सकारात्मक पहलू का होना आवश्यक है। क़ुरआन ने इस पहलू पर विशेष बल दिया है जिसका अन्दाज़ा आपको ऊपर की आयतों से हुआ होगा।

ईश्वर को निर्गुण भी कहा जाता है। निर्गुण कहने का अर्थ यह कदापि नहीं कि ईश्वर कोई ऐसी मात्र शुष्क कल्पना है जिससे विशेष प्रकार की ज्ञानात्मक रुचि को भले ही सन्तोष हो, किन्तु मानव-हृदय के लिए उसमें आकर्षण का कोई तत्व नहीं या जिसमें भक्ति एवं प्रेमभाव के उद्वेलन के लिए कोई अवसर नहीं। निर्गुण होने का अर्थ वास्तव में यह है कि उसके गुण पार्थिव एवं लौकिक वस्तुओं के गुणों से उच्चतर हैं। उसका गुणों के सहारे से निरूपण अथवा निर्वचन नहीं हो सकता। यहाँ की वस्तुओं को देखें,

तो आप पाएँगे कि उनकी विशेषताएँ और गुण सापेक्ष (Relative) हैं। ईश्वरीय सत्ता में अपूर्णता का कोई अंश नहीं पाया जा सकता। वह अपने में पूर्ण है। उसे किसी दृष्टि से भी किसी अन्य पर आश्रित नहीं कह सकते। मनुष्य को देखिए, तो वह ज़रूरतों और आवश्यकताओं का मात्र समूह लक्षित होता है। उसे भोजन भी चाहिए और रहने के लिए स्थान भी चाहिए। देखने के लिए मनुष्य को आँख़ें ही नहीं वरन् उसे प्रकाश भी अपेक्षित है। मानव-मुख की सारी सुन्दरता विलुप्त हो जाए यदि बाह्य रूप से प्रकाश का प्रबन्ध न हो। वह अपने में कोई ऐसा प्रकाश नहीं रखता जिसके द्वारा उसके सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हो सके। मनुष्य ही नहीं संसार की प्रत्येक वस्तु अपने अस्तित्व के लिए अन्य वस्तुओं तथा अवस्थाओं पर निर्भर करती है। किन्तु ईश्वर के विषय में इस प्रकार की अपूर्णता की कल्पना नहीं की जा सकती।

जिन अपूर्णताओं को हम गुण समझने के अभ्यस्त हो गए हैं, सर्वविदित है कि ईश्वर उन अपूर्णताओं से युक्त नहीं है। इस दृष्टि से उसे यदि कोई निर्गुण अथवा चरम निरुपाधि सत्ता कहना चाहे तो कह सकता है। ईश्वर अपनी आत्म-स्थित एकत्व में स्वयं पूर्ण है। अनन्त को सान्त की आवश्यकता ही क्या? निरपेक्ष (Absolute) सापेक्ष (Relative) पर, अकारण सकारण पर आश्रित नहीं होता। हेमिल्टन का कथन है कि मनुष्य का समग्र ज्ञान आवश्यक रूप से सापेक्ष है, निरपेक्ष को हम कभी जान नहीं सकते।[1] मैन्सेल का भी कथन है कि निरपेक्ष सभी दशाओं तथा सीमाओं से परे है। निरपेक्ष का विचार नहीं हो सकता। वह अज्ञात और अज्ञेय ही रहता है। हम कुर्सी को जान सकते हैं जब हम उसे मेज़ तथा अन्य चीज़ों से जो उसे सीमित करती हैं, भेद करते हैं। विचारने का अर्थ ही होता है भेद करना तथा भेद करने का अर्थ हुआ सीमित करना। निरपेक्ष अपने पृथक किसी अन्य वस्तु से सीमित नहीं होता। अतः उसका विचार करना सम्भव नहीं। हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने भी अपना यही मत व्यक्त किया है। अज्ञेयवाद की इस धारणा में सत्य का अंश भले ही विद्यमान हो, किन्तु इसे पूर्णतः

1. Introduction to Philosophy of Religion, p. 13

सत्यानुकूल नहीं कहा जा सकता। ज्ञान तथा सत्ता दोनों को एक-दूसरे से नितान्त असम्बद्ध समझना सही नहीं।

वास्तविकता यह है कि सान्त का स्वभाव यह है कि वह अपनी स्वतन्त्रता तथा जीवन की उच्चतम सिद्धि निरपेक्ष में ही प्राप्त करता है। यदि निरपेक्ष वस्तुओं को सापेक्ष वस्तुओं के जगत् से सर्वथा असम्बद्ध और परे माना जाए तो फिर उसे सीमित जगत् का आधार और मूल कारण कैसे माना जा सकता है? अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि निरपेक्ष ईश्वर सान्त पदार्थों के जगत् से पूर्णरूपेण परे नहीं है, बल्कि वही इस जगत् का आधार और प्रारम्भ रूप से इसमें व्याप्त है तथा साथ ही परे भी है, क्योंकि वह कारणहीन, असीम सत्ता है। यह कहना कि हम केवल प्रपंच अथवा प्रतीति (Phenomenon of appearance) को ही जान सकते हैं तत्व को नहीं स्वयं विरोधी बात है। यदि वास्तविक वस्तु के विषय में हम कुछ भी नहीं जानते तो हम स्वयं यह बात कैसे कह सकते हैं कि हम उन्हें जान नहीं सकते? जब हम कहते हैं कि वस्तु मात्र प्रतीति अथवा गुण ही है तो इसका यह भी अर्थ होता है कि प्रतीति के अतिरिक्त भी कोई वास्तविकता तथा गुण के सिवा भी कोई तत्व है जिसके स्वभाव को देखते हुए उसे हम सामान्य वस्तुओं से भिन्न वर्ग में रखते हैं। इस प्रकार प्रतीति से परे पाई जानेवाली सत्ता के विषय में कम-से-कम हम कुछ जानते अवश्य हैं, हाँ इसमें सन्देह नहीं कि उसका पूरा ज्ञान प्राप्त करने में हमारी बुद्धि अपनी असमर्थता प्रकट करती है। उपनिषद में एक सुन्दर वाक्य आया है: **नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।**[1]

> "हमने ब्रह्म को भली-भाँति जान लिया है, ऐसा नहीं मानते और न ऐसा ही मानते हैं कि हम उसे पूर्णतया नहीं जानते क्योंकि उसे जानते भी हैं।"

सारांश यह है कि ईश्वर के प्रति सकारात्मक (Positive) और नकारात्मक (Negative) दोनों ही पहलुओं को एक साथ अपने सामने रखना चाहिए।

---

1. केनोपनिषद् 2/2

क़ुरआन जहाँ ईश्वरीय गुणों का विस्तृत परिचय देता है, वहीं वह उसकी महानता, पवित्रता आदि का उल्लेख भी करता है।

एक ओर क़ुरआन में हम पाते हैं–

"और ईश्वर की सर्वोच्च मिसाल (Similitude) है और वह प्रभुत्वशाली, तत्त्वदर्शी है।" (क़ुरआन, सूरा-16 नहल्, आयत-60)

"आकाशों और धरती में उसकी मिसाल सर्वोच्च है और वह प्रभुत्वशाली, तत्त्वदर्शी है।" (क़ुरआन, सूरा-30 रूम, आयत-27)

"उसके लिए अच्छे नाम हैं।" (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-24)

इसके साथ दूसरी ओर क़ुरआन सचेत करता है–

"उस जैसी कोई चीज़ नहीं? और वह सुनता और देखता है।"
(क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयत-11)

"(लौकिक) निगाहें उसे नहीं पातीं, परन्तु वह निगाहों को पा लेता है और वह अति सूक्ष्मदर्शी, ख़बर रखनेवाला है।"
(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-103)

"और कोई नहीं जो उसके समकक्ष हो।"
(क़ुरआन, सूरा-112 इख़लास, आयत-4)

"महिमावान् है वह! और उससे उच्च है जो गुण ये (असत्यवादी) बयान करते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-100)

"महान् और उच्च है तुम्हारा रब, प्रताप का स्वामी; उन बातों से जो वे (असत्यवादी) बयान करते हैं।"
(क़ुरआन, सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयत-180)

प्राचीन ग्रन्थों से भी क़ुरआन की उपरोक्त बातों की पुष्टि होती है। बाइबल में है–

"हे यहोवा (प्रभुवर)! तेरे समान कोई नहीं है, तू महान् है और तेरा नाम पराक्रम में बड़ा है।" (यिर्मयाह 10/6)

"मैं ही आदि और मैं ही अन्त हूँ।" (यशायाह 48/12)

"हे परमेश्वर (यहोवा,) तेरी राजगद्दी अनादिकाल से स्थिर है। तू सर्वदा से है।" (भजन-संहिता 93/2)

(परमेश्वर ने कहा,) क्या कोई ऐसे गुप्त स्थानों में छिप सकता है कि मैं उसे न देख सकूँ? क्या स्वर्ग और पृथ्वी दोनों मुझसे परिपूर्ण नहीं हैं?" (यिर्मयाह, 23/24)

वेदों में है–

अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते।

ते नाकपालश्चरिति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य।।

(अथर्ववेद 10/8/12)

"अन्तरहित बहुत प्रकार फैला हुआ (ब्रह्म अर्थात्) मोक्ष-सुख का स्वामी (परमात्मा) परस्पर सीमायुक्त उन (दोनों अर्थात्) अन्तरहित (कारक) और अन्तवाले (कार्य जगत्) को अलग-अलग करता हुआ और इस (ब्रह्माण्ड) का भूतकाल और भविष्यत्काल को जानता हुआ विचारता है।"

भावार्थ : अनन्त मोक्षस्वरूप परमात्मा कारण कार्य रूप जगत् तथा भूत भविष्यत् और वर्तमानकाल को जानता हुआ सदा वर्तमान है।[1]

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।।

(ईशावास्योपनिषद्, मंत्र-1, यजुर्वेद 40/1)

"इस सृष्टि में जो कुछ भी (जड़ अथवा चेतन) है, वह सब ईश द्वारा आवृत-आच्छादित है (उसी के अधिकार में है)।"

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। (यजुर्वेद 32/3)

"जिस (प्रभु) का महान् प्रसिद्ध यश है उस परमात्मा की कोई प्रतिमा (मूर्ति) अथवा उपमा नहीं है।"

श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है–

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।

1. क्षेमकरणदास त्रिवेदी अथर्ववेद भाष्य, पृ. 310

स्वकर्मण तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।। (18/46)

अर्थात् "जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है (और) जिससे यह समस्त (जगत्) व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईश्वरीय सत्ता के सम्बन्ध में हमारे लिए आवश्यक है कि हम ये दोनों ही पक्ष अपने सामने रखें। हम न तो उसे मात्र शून्य समझें और न उसे लौकिक एवं भौतिक वस्तुओं के स्तर पर उतार लाएँ। ईश्वर की महानता एवं पवित्रता और उसके निरपेक्ष होने का ध्यान प्रत्येक दशा में आवश्यक है।

ईश्वर का व्यक्तित्व

अब हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि हम किस प्रकार के ईश्वरीय व्यक्तित्व को अपने मन में धारण करें? इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह है कि चेतना, ज्ञान, संकल्प आदि गुणों को आरोपित किए बिना किसी व्यक्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। किसी महान् व्यक्तित्व के लिए आवश्यक है कि उसमें महानता के गुण अपनी पूर्णता को प्राप्त हों। फिर इसके साथ यह भी आवश्यक है कि उस व्यक्तित्व में सौन्दर्य तत्व भी पाया जा सके, क्योंकि यह व्यक्तित्व का उभरा हुआ गुण लक्षित होता है।

मूल कठिनाई यहाँ यह पेश आती है कि हमें इन गुणों का परिचय सापेक्ष रूप से ही प्राप्त होता है। ईश्वर की सत्ता सापेक्षता से मुक्त होने के कारण हमारे मन और मस्तिष्क के लिए एक समस्या बन जाती है, क्योंकि मनुष्य प्रत्येक चीज़ को सापेक्ष स्थिति में देखने का अभ्यस्त है। अपेक्षारहित वस्तु की कल्पना उसके लिए आसान नहीं। फिर भी देखा जाए तो स्वयं मानव के भीतर ही ऐसी स्थिति पाई जाती है जिससे सत्यता को उसके लिए सुग्राह्य बनाया जा सकता है।

हम मिट्टी का मात्र ढाँचा नहीं हैं, शरीर के साथ हमारी अपनी आत्मा भी है जो शरीर के परिवर्तनशील होने के बावजूद हमारे व्यक्तित्व की

अखण्डता स्थिर रखती है और हम अपने को वही व्यक्ति समझते हैं जो हम बचपन में होते हैं।

हमारे देखने-सुनने का कार्य भी यथार्थतः उस चेतना-बिन्दु पर होता है जहाँ आत्मा किसी चीज़ को देखती या सुनती है। आत्मा यदि न देखे या न सुने तो न कोई चीज़ देखी जा सकती है और न कुछ सुना जा सकता है। हमारी आत्मा तक किसी वस्तु का रंग या उसकी काया तो नहीं जाती, फिर भी वह उसे देख या सुन लेती है।

बातचीत के समय भी वास्तव में हमारी आत्मा ही बोलती है। आत्मा की वाणी मस्तिष्क, जिह्वा आदि के माध्यम से प्रकट होती है। हमारी वाणी या आवाज़ हमारी आत्मा की आवाज़ का मात्र मूर्त रूप है। इसी प्रकार हमारे देखने और सुनने को भी आत्मा के देखने-सुनने का बाह्य रूप समझना चाहिए। और ठीक इसी प्रकार हमारे कर्म, सौन्दर्य आदि विशेषताएँ भी वास्तव में आत्मिक विशेषताओं एवं गुणों का प्रत्यक्ष रूप हैं।

हमारी आत्मा और परमात्मा के मध्य बड़ी एकरूपता पाई जाती है। जिस प्रकार ईश्वर ज्ञानेन्द्रियों की पकड़ की सीमा आदि से परे है, उसी प्रकार हमारी आत्मा भी दिशा एवं स्थान से मुक्त है। वहाँ कैसा-कितना आदि का पता नहीं चलता और न दिशा आदि के चिह्न दिखाई देते हैं।

जिस प्रकार ईश्वर प्रत्येक वस्तु को देखता और सुनता है, किन्तु वहाँ न किसी भौतिकता की पहुँच होती है और न शब्द उसकी श्रवण-शक्ति से टकराते हैं। यही स्थिति हमारी आत्मा की भी है।

फिर जिस प्रकार ईश्वर की वाणी की पवित्रता और निरपेक्षता का हाल यह है कि न तो उसमें शब्दों और ध्वनि की सीमाबद्धता पाई जाती है और न वह उच्चारण पर आश्रित है, किन्तु उसकी वाणी में अर्थ एवं भाव भी पाया जाता है और सुनने-सुनाने के गुण भी मौजूद हैं। शब्द और उच्चारण की शर्तें तो इस लोक में आकर ज़ाहिर होती हैं। इसी प्रकार हम अपनी आत्मा की आवाज़ को दिल के कानों से सुनते हैं, हालाँकि न किसी प्रकार की आवाज़ होती है और न उसमें शब्द होते हैं।

इस प्रकार अपनी आत्मा के कारण ईश्वरीय व्यक्तित्त्व की कल्पना हमारे लिए असाध्य कार्य नहीं रहती। अपनी आत्मा को हम भले ही न देख पाते हों लेकिन उसके एक विशेष गुण चेतना से हम परिचित हैं। विचार कीजिए, क्या यह चेतना कोई भौतिक वस्तु है? क्या चेतना अपने में पूर्ण नहीं है? क्या उसे अवस्थित रहने के लिए किसी विशेष स्थान (Space) और दिशा की आवश्यता है? क्या उसे पैक करके कहीं भेजा जा सकता है? स्पष्ट है इनमें से कोई बात चेतना के विषय में नहीं कही जा सकती। फिर ईश्वर का स्थान-आश्रय से परे होना क्यों समझ में नहीं आता?

रहा यह प्रश्न कि क्या ईश्वरीय सत्ता में सौन्दर्य-बोध की सम्भावना भी पाई जाती है तो इसका सीधा-सादा उत्तर तो यह है कि यदि वहाँ सौन्दर्य नहीं तो संसार में सौन्दर्य का प्रादुर्भाव कहाँ से सम्भव हो सका। अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का भी कथन है कि "ईश्वर सुन्दर है और सुन्दरता को पसन्द करता है।" इस सम्बन्ध में हमारी कठिनाई का वास्तविक कारण यह है कि हम रंग-रूप के द्वारा ही सुन्दरता को देखने के अभ्यस्त हैं। हम समझते हैं कि सौन्दर्य काया के बिना अवस्थित ही नहीं हो सकता। जहाँ काया नहीं, वहाँ सौन्दर्य नहीं; किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। सौन्दर्य वास्तव में एक भाव है। सौन्दर्य का सम्बन्ध हम देखने से जोड़ते हैं। देखना अपनी वास्तविक स्थिति में मात्र चेतना या भाव है। जर्मन दार्शनिक जार्ज विल्हेम फ्रेड्रिक हेगेल (Georg Wilhelm Friedrich Hegel)[1] ने इस सम्बन्ध में एक बड़ी ऊँची बात कही है—

1. "Beauty is the shining of the idea through matter. Only the soul and

---

1. जार्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल उन्नीसवीं सदी का एक महान् दार्शनिक हुआ है। इसका जन्म 27 अगस्त 1770 ई॰ में जर्मनी के शहर स्टटगार्ट (Stuttgart) में हुआ। इन्होंने तत्वमीमांसा (Metaphysics), इतिहास-मीमांसा (Philosophy of History), राजनीति-मीमांसा (Political Philosophy) विषयों पर बड़ी महत्वपूर्ण रचनाएँ कीं। इन्होंने तर्कशास्त्र (Logic), सौन्दर्यशास्त्र (Aesthetics) और ज्ञान-मीमांसा (Epistemology) पर कई पुस्तकें लिखीं हैं। इनकी मृत्यु 14 नवम्बर 1831 ई॰ में बर्लिन (Berlin) (जर्मनी) में हुई।

what pertains to it is truly beautiful and, therefore the beauty of the nature is only reflection of natural beauty of spirit."

('What is Art' by Leo Tolstoy, p. 24 & 29)

अर्थात् "सौन्दर्य वास्तव में प्रत्यय (Idea) का प्रतिरूप है। वास्तव में सौन्दर्य आत्मा तथा तत्सम्बन्धी वस्तुओं ही में है, अतः प्राकृतिक सुन्दरता आत्मिक सौन्दर्य की मात्र छाया है।"

सौन्दर्य अपनी वास्तविकता की दृष्टि से भौतिकता से परे की वस्तु है; भौतिक वस्तुओं में सौन्दर्य इसलिए है कि सौन्दर्य भौतिकता से परे पाया जाता है, अन्यथा भौतिक वस्तुओं में कदापि इसकी सम्भावना न होती। अतः इस गुण से ईश्वरीय सत्ता के विभूषित होने में कोई आपत्ति नहीं। ईश्वर की वास्तविक कल्पना से केवल बौद्धिक समस्याओं का ही समाधान नहीं होता, बल्कि इसके साथ हमारी हार्दिक एवं आत्मिक समस्याओं का भी समाधान होता है। मन में तरंगित कितने ही मधुर भावों को ईश-कल्पना से आश्रय मिल जाता है। बल्कि सत्य तो यह है कि ईश्वर के सत्यस्वरूप को न जानने के कारण उन समस्याओं का भी समाधान नहीं हो पाता जो सामान्यतः भौतिक समस्याएँ समझी जाती हैं। जो व्यक्ति ईश्वर के सन्सर्ग में नहीं आता वह जीवन के सौन्दर्य और उसकी वास्तविकता से सदैव अनभिज्ञ रहता है।

रहस्यवाद की वास्तविकता

इसमें सन्देह नहीं कि ईश-कल्पना के साथ एक प्रकार का रहस्यवाद लगा रहता है। लेकिन यह एक स्वाभाविक बात है और मानव-जीवन को ऐसे रहस्यवाद की आवश्यकता भी है। इस रहस्यमयता के दो प्रमुख कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि ईश्वर की सत्ता स्वयं रहस्यमयी है ही, उसे पूर्णरूप से जान पाना मानव के लिए सम्भव नहीं। मानव तो अभी स्वयं अपने रहस्यों को भी पूरी तरह नहीं जान सका है। फिर ईश्वर के बारे यह दावा कोई कैसे कर सकता है कि उसने ईश्वर को पूर्णतः जान लिया!

इस रहस्यवाद का दूसरा कारण यह है कि यदि किसी के लिए ईश्वर

सम्बन्धी कुछ रहस्योद्घाटन होता भी है तो उसके पास ऐसे शब्द नहीं होते जिनके द्वारा वह उसे दूसरों से कह सके। वह इस सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता है और कह भी जाता है, किन्तु जब अभिदा, लक्षणा, व्यंजना आदि शब्द-शक्तियाँ इस विषय में निरुपाय सिद्ध हों, तो कोई करे भी तो क्या! किसी ने यदि मुख से कुछ शब्द निकाले भी तो उससे कदाचित् लाभ कम, हानि अधिक हुई। लोग भ्रम में पड़ गए और कितने ही लोग सही मार्ग से भटककर बहुत दूर निकल गए।

किसी ने यदि यह पाया कि जगत् में केवल एक ईश्वर की सत्ता ही स्वतन्त्र और स्वयंभू (Self-existent) सत्ता है। ईश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं जो अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता हो। स्वतन्त्र अस्तित्व केवल एक ही है और वह ईश्वर का अस्तित्व है। दूसरों का अस्तित्व मात्र ईश्वरीय कृपा या उसका अनुग्रह है। यहाँ तक तो बात ठीक थी, किन्तु इसके लिए भावावेश में जो शब्द प्रयोग किए गए उनसे कितने ही लोग पथभ्रष्ट हो गए और उन्होंने जगत् की प्रत्येक वस्तु को अपने स्वयं को यथातथ्य (Exact) ईश्वर घोषित कर दिया और सत्य से बहुत दूर जा पड़े।

यह ईश्वर की दयालुता है कि वह लोगों पर यह ज़िम्मेदारी नहीं डालता कि वे ईश्वरीय सत्ता के पूर्ण रहस्य का पता लगाएँ। लोगों का दायित्व है तो यह कि ईश्वर की महानता एवं उच्चता को स्वीकार करें और उसके आगे नतमस्तक हों। ईश्वर पर अपनी पूर्ण आस्था बनाए रखें। ईश्वर लोगों से उनके बुद्धि-स्तर और समझ के अनुसार मामला करता है। दार्शनिक दृष्टिकोण से मानव का दायित्व वहीं तक है जहाँ तक उसकी बुद्धि एवं विवेक उसका साथ दे। हम अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व को मानते हैं, हालाँकि जैसा कि हम कह चुके हैं कि हम अपने को भी पूर्ण रूप से नहीं जानते, फिर ईश्वर को मानने के लिए हम यह आग्रह करने के अधिकारी कैसे हो सकते हैं कि हम तो उसे उसी समय मानेंगे जब उसे पूर्ण रूप से जान लेंगे। जबकि हममें यह सामर्थ्य ही नहीं कि हम ईश्वर को पूर्ण रूप से जान सकें।

एकेश्वरवाद और मानव-जीवन

हमें केवल ईश्वर के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करना है बल्कि इसके साथ ही उसे अपने जीवन में पूर्ण रूप से सम्मिलित भी करना है। आज की सबसे बड़ी समस्या यह है कि ईश्वर को मानव अपने जीवन से अलग करता जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप नैतिक और चारित्रिक दृष्टि से मनुष्य पशु-स्तर पर पहुँच रहा है। जब हृदय में ईश्वर का भय और जीवन में उसकी मरज़ी का ख़याल न होगा तो मनुष्य जो बुराई भी कर गुज़रे कम है।

यदि चरित्र-निर्माण का प्रयास ईश्वर से विमुख होकर किया जाएगा तो समाज में जिस तरह के लोग पाए जाएँगे, वे ऐसे न होंगे जिन पर भरोसा किया जा सके।

जीवन में ईश्वरीय आदेश का पालन हो और उसकी मरज़ी को ही हर विषय में प्राथमिकता प्राप्त हो, इसके अतिरिक्त मानव-जीवन की प्रतिष्ठा की रक्षा का कोई और उपाय नहीं है।

मानव-जीवन में ईश्वर का प्रवेश

ईश्वर का हमारे समग्र जीवन से गहरा सम्बन्ध है। हमारा व्यक्तिगत जीवन हो या सामाजिक जीवन, ईश्वर को जीवन के किसी भाग से हम विलग नहीं कर सकते। ईश्वर को मानना ही पर्याप्त नहीं है, हमारे लिए आवश्यक है कि हम अपने सम्पूर्ण जीवन को ईश्वरीय इच्छा के अनुकूल बनाएँ। उदाहरणार्थ जब वह हमारा और सम्पूर्ण जगत् का स्रष्टा और पालनकर्ता है तो हम उसे स्रष्टा और पालनकर्ता स्वीकार करें और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक स्थिति में उसके आदेशों का पालन करें।

जब वह हमारा दाता है तो हम उसके आगे कृतज्ञता दिखलाएँ, उसके अकृतज्ञ बनकर न रहें। उसी को अपनी अभिलाषा, आकाँक्षा और प्रेम का वास्तविक लक्ष्य समझें।

जब वह हमारा रक्षक है तो हमारा भरोसा उसी पर हो। उसी से हम सहायता चाहें। संकट और आपदा में उसे ही पुकारें। हमारी फ़रियाद उसी से हो। उसी से प्रार्थनाएँ करें। जब वह प्रभुत्वशाली और सर्वशक्तिमान है तो उसी की शरण में अपने-आपको डाल दें और उसी की प्रसन्नता चाहें।

जब वह सर्वज्ञ है तो हम यह मानें कि उससे कोई भी चीज़ छिपी नहीं, वह हमारी एक-एक हरकत को जानता और देखता है। उससे निर्भय होकर उद्दण्डता का जीवन न जिएँ। जब वह हमारा मार्गदर्शक है तो हम उसके मार्गदर्शन का अनुसरण करें और उसी के मार्गदर्शन में अपना कल्याण निश्चित जानें। अपने सन्देष्टाओं यानी रसूलों के द्वारा उसने हमें जीवन का जो मार्ग दिखाया है उस पर चलें और उसके विरुद्ध जितने भी मार्ग हैं उन पर जाने से बचने की पूरी कोशिश करें।

एकेश्वरवाद गौरवमयी जीवन बनाता है

एकेश्वरवाद की धारणा मानव को अधर्मता से बचाती और जीवन को अनुपम गौरवमय बनाती है। एक ईश्वर में विश्वास रखने के बाद मानव ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य की दासता स्वीकार नहीं करता। वह ईश्वर ही के आगे झुकता है। किसी अन्य के आगे नतमस्तक होकर अपने को नीचे नहीं गिराता। जिसने ईश्वर के अतिरिक्त किसी और के आगे अपने-आपको झुकाया वह अधम और मर्यादाहीन है। उससे बढ़कर पतित कोई नहीं। यही बात क़ुरआन में इन शब्दों में कही गई है—

> "और जो व्यक्ति ईश्वर का साझीदार ठहराता है तो मानो वह आकाश से गिर पड़ा, अब चाहे उसे पक्षी उचक ले जाए या वायु उसे दूरवर्ती स्थान पर फेंक दे।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-31)

यह उपमा अत्यन्त स्पष्ट है। अनेकेश्वरवादी अथवा ईश्वर के अतिरिक्त दूसरों की उपासना करनेवाला कुलटा नारी के सदृश होता है। सम्मान एवं प्रतिष्ठा से वह वंचित रहता है। इस आयत में 'आकाश से गिर पड़ा' कहकर इसी तथ्य की ओर संकेत किया गया है। ऐसे व्यक्ति में चरित्र की शक्ति क्षीण हो जाती है। उसका आत्मगौरव एवं स्वाभिमान जाता रहता है। और सबसे खेद की बात यह है कि वह अपने परम लक्ष्य से दूर होकर दुर्दशाग्रस्त होकर रहता है। इसी पक्ष की ओर संकेत आयत के इन शब्दों से मिलता है कि 'या वायु उसे दूरवर्ती स्थान पर फेंक दे।'

एक और वास्तविक ईश्वर में विश्वास रखनेवाला तो केवल उसी एक ईश्वर के आगे झुकता है जिसके आगे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नतमस्तक हो रहा है। एक वास्तविक ईश्वर के आगे झुकना ही मानव के गौरव और सम्मान की बात है। जो व्यक्ति कहीं और अपने लिए गौरव और सम्मान खोजता है, उसे आदर देनेवाला कोई नहीं।[1]

---

1. क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-18

एक ईश्वर को मानने के बाद मनुष्य की दृष्टि संकुचित नहीं रहती। मनुष्य जब तक ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के या अपने गिर्द चक्कर काटता है, उसकी दृष्टि संकुचित ही रहती है। वह संसार को उससे अपने सम्बन्ध की दृष्टि से देखता है या अपने जैसे मुहताज दूसरे व्यक्तियों की निगाह से देखता है। उसके सामने कोई उच्च या व्यापक आदर्श नहीं होता। उसकी मित्रता, वैर, आदर, अनादर, माँगों आदि की परिधि अत्यन्त संकुचित होती है, जिसके भीतर रहते हुए जाने वह कितनों से डरता और कितनों से आशाएँ रखता है; किन्तु ईश्वर को मानकर जब वह सीमित परिधि से बाहर निकल आता है तो उसके जीवन में अद्भुत क्रान्ति आ जाती है। अब वह प्रत्येक वस्तु पर उससे अपने सम्बन्ध से नहीं, ईश्वर के सम्बन्ध से दृष्टि डालता है। फिर तो संसार की प्रत्येक वस्तु से उसका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, क्योंकि संसार की प्रत्येक वस्तु उसके ईश्वर की है। उसकी मित्रता और शत्रुता का मापदण्ड वह नहीं, उसका ईश्वर होता है। उसकी दोस्ती और दुश्मनी सब कुछ ईश्वर के लिए होती है, अपने लिए नहीं। वह देखता है कि सब कुछ उसके ईश्वर का है और ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु ईश्वर की वन्दना कर रही है। फिर दुनिया में उसके लिए कोई पराया नहीं रहता, सब अपने हो जाते हैं। अब वह अपनों से वैर-भाव कैसे रख सकता है! उसके प्रेम एवं सहानुभूति की परिधि सीमित न रहकर अत्यन्त व्यापक हो जाती है, जिसमें सारा विश्व समा जाता है। अब वह तंग-दिल नहीं होता और न उसकी दृष्टि संकुचित रहती हैं। वह विशालहृदय, उदारचेता, फ़राख़दिल हो जाता है।

एक ईश्वर को पाकर वह अपने-आपको भयहीन और सुरक्षित महसूस करता है, जिसके परिणामस्वरूप वह अत्यन्त साहसी और निरातंक होता है। एक ईश्वर में विश्वास उसे आत्म-सम्मान की उच्चता पर पहुँचा देता है। वह हाथ फैलाता है तो ईश्वर के आगे। माँगता है तो ईश्वर से ही। प्रार्थना करता है तो उसी से। मदद चाहता है तो उसी से। हानि-लाभ का मालिक उसी को समझता है। वह जानता है कि सब कुछ एक ईश्वर के हाथ में है। उसके सिवा सारे सहारे झूठे हैं।

एक ईश्वर में विश्वास रखनेवाला व्यक्ति हमेशा आशावान होता है। वह कभी हताश नहीं हो सकता। वह चाहे कितने ही आपदाओं में घिरा हो, किन्तु ईश्वर का सहारा उसे बल दिए रहता है।

यदि उससे कोई गुनाह भी हो जाता है तो वह जानता है कि क्षमा का द्वार ईश्वर ने बन्द नहीं किया है। ईश्वर अत्यन्त करुणामय और दयालु है, उसे उसका ईश्वर अवश्यतः शरण में ले लेगा। जो लोग भावावेश में या भूल से कोई ग़लती व गुनाह कर जाते हैं और पश्चाताप विशुद्ध मन से करते हैं उनके प्रति क़ुरआन कहता है–

> "और जो कोई बुरा कर्म कर बैठे या अपने-आप पर अत्याचार करे, फिर ईश्वर से क्षमा की प्रार्थना करे तो वह ईश्वर को बड़ा क्षमाशील और दयावान पाएगा।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-110)

एक ईश्वर को माननेवाला अत्यन्त धैर्यवान और सहनशील भी होता है। कोई भी संकट उसे सच्चाई के मार्ग से हटा नहीं सकता। वह समझता है कि आदमी पर जो मुसीबत भी आती है उसे ईश्वर के सिवा कोई टाल नहीं सकता। इसलिए वह हर कठिनाई और मुसीबत के मुक़ाबले में चट्टान होता है। हज़रत हूद (अलैहि०), जो ईश्वर के सन्देशवाहक और एकेश्वरवादी हुए हैं, ने अपने विरोधी लोगों को चुनौती दी थी–

> "तुम सब मिलकर मेरे साथ दाँव-घात लगाकर देखो और मुझे मुहलत न दो। मैं तो उस ईश्वर पर भरोसा रखता हूँ जो मेरा भी 'रब' है और तुम्हारा भी 'रब' है। कोई जीवधारी ऐसा नहीं जिसकी चोटी उसके हाथ में न हो।"
>
> (क़ुरआन सूरा-11 हूद, आयत 55-56)

ईश्वरवादी व्यक्ति में अद्‌भुत वीरता आ जाती है। वह कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी सत्य से विचलित नहीं होता। वह सत्य के लिए कोई भी संकट अत्यन्त साहस के साथ झेल जाता है। उसे ईश्वर से गहरा प्रेम होता है। वह ईश्वर के लिए सब कुछ त्याग सकता है। वह सांसारिक सुख को पारलौकिक सुख के मुक़ाबले में तुच्छ जानता है। वह जानता है कि मौत एक

दिन संसार की सारी सुख-सम्पन्नता छीन लेगी, फिर इससे कैसा मोह करना! मृत्यु अपने वक्त पर आकर रहेगी। फिर उससे डरना क्या! अगर वह डरता है तो केवल ईश्वर से डरता है। एक ईश्वर का डर उसके भीतर से सारे डरों को निकाल देता है।

ऐसे व्यक्ति में जहाँ एक ओर आत्मगौरव की भावना पाई जाती है, वहीं वह अत्यन्त विनयशील और विनम्र भी होता है। वह अहंकारी और घमण्डी नहीं होता। वह अपने को ईश्वर के आगे विवश पाता है। उसकी शक्ति से बाहर है कि वह ईश्वर के अधिकार-क्षेत्र से बाहर निकल सके। यह धारणा उसे अत्यन्त नम्र, विनयशील और सुशील बना देती है।

एक ईश्वर में विश्वास के बाद एक विशेष बात यह होती है कि मनुष्य झूठी आशाओं और झूठे भरोसों का सहारा नहीं लेता। वह यथार्थवादी हो जाता है। वह जानता है कि ईश्वर के यहां कोई धोखा नहीं, वहाँ कोई ग़लत सिफ़ारिश काम नहीं आ सकती। ईश्वर के यहाँ जो चीज़ काम आने की है वह केवल धर्मपरायणता और ईश-भक्ति है। वह अच्छी तरह जानता होता है कि ईश्वर के यहाँ वही व्यक्ति सम्मान पा सकता है जो ईश्वर का सच्चा आज्ञाकारी और उससे डरनेवाला होगा। कोई नहीं जो उसके यहाँ ग़लत ढँग से किसी की सिफ़ारिश कर सके। कुछ लोगों की यह धारणा कि उसके एक बेटा है वह हमारे गुनाहों का प्रायश्चित बनकर हमें मुक्ति दिला देगा या यह कि हम ईश्वर के औरसी सन्तान या चहेते व सगे-सम्बन्धी हैं हमें मुक्ति मिल कर ही रहेगी। ये सभी मिथ्या धारणाएँ हैं। वह इस यथार्थ को जानता है कि ईश्वर ने न तो किसी को अपना बेटा बनाया है जो हमारे गुनाहों का प्रायश्चित बनकर हमारी मुक्ति एवं निस्तार की व्यवस्था कर सके। न कोई ईश्वर का ऐसा चहेता और सगा है जिसे वह सज़ा ही न दे, चाहे उसके करतूत कैसे ही क्यों न हों। ईश्वर की दृष्टि में सभी समान हैं सब उसी के पैदा किए हुए हैं। बुरा वह है जो बुरे मार्ग पर चले और अच्छा वह है जो अच्छे मार्ग को अपनाए और अपने जीवन को ईश्वर की इच्छा के अनुकूल बनाए।

एक ईश्वर को अपने जीवन में उतारने के बाद मानव के व्यक्तित्व में पवित्रता आ जाती है। उसके हृदय में लोभ, ईर्ष्या, घृणा, वैर आदि तुच्छ भवनाएँ नहीं पनप पातीं। फिर ऐसा व्यक्ति उतावला और अधीर भी नहीं होता। वह धैर्य से काम लेता है। उसका भरोसा ईश्वर पर होता है। दूसरों की ओर से वह लालसारहित होता है। धैर्य और संयम के कारण उसके चरित्र में बड़ी दृढ़ता पाई जाती है। वह अपनी जीविका हमेशा सम्मानित रूप से ही प्राप्त करने की कोशिश करता है। फिर इस प्रकार जो कुछ उसे मिल जाता है उसे ईश्वर की देन समझकर उसका आभारी होता है। वैध रूप से मिली हुई थोड़ी सी रोज़ी के मुक़ाबले में हराम की कमाई की बड़ी-से-बड़ी धन-राशि को भी वह तुच्छ जानता है। उसे मालूम है कि आदर, धन, शासन, शक्ति, सौन्दर्य आदि सारी चीज़ों का मालिक ईश्वर है। उसकी निर्धारित एवं सुनियोजित व्यवस्था के अन्तर्गत हर एक को जो कुछ मिलना होता है, मिलता है, हर मामले में अपेक्षित उद्देश्य को भली-भाँति ईश्वर ही जानता है। अतः ईश्वरीय व्यवस्था एवं प्रणाली पर किसी तरह का आक्षेप करना मात्र अज्ञान है।

ऐसा व्यक्ति जो ईश्वर में विश्वास रखता है और उसके भेजे हुए आदेशों को स्वीकार करता है और उन शुभ सूचनाओं और चेतावनी से अनभिज्ञ नहीं होता जो ईश्वर ने अपने रसूलों के द्वारा दी हैं, वही इस योग्य होता है कि अपने दायित्व को पूर्ण रूप से निभा सके। ऐसा व्यक्ति अपने शरीर और आत्मा दोनों ही पर ईश्वर का अधिकार स्वीकार करता है। फिर यह असम्भव है कि वह अपने आन्तरिक या बाह्य जीवन को अपवित्र रखे। उसकी आत्मा जागरूक होती है। उसे पता है कि ईश्वर उसकी छोटी बड़ी हर चीज़ को जानता है, उससे वह अपनी कोई भी चीज़ छिपा नहीं सकता। फिर वह उसकी पकड़ से कैसे बच सकता है! इसलिए वह खुले-छिपे किसी हालत में भी कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता और न सोच सकता जो ईश्वरीय इच्छा के प्रतिकूल या मानव-कल्याण के विरुद्ध हो। सामान्य शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव सीमित होता है। इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षा-दीक्षा के द्वारा लोगों को एक हद तक प्रभावित किया जा सकता है, फिर भी इसके साथ तरह-तरह

की आपत्तियाँ मानवों के साथ लगी ही रहती हैं। स्वयं मानव की कितनी ही इच्छाएँ और वासनाएँ ऐसी हैं जो अवसर पाते ही उभर आती हैं और उसे अपना वशीभूत बना लेती हैं। इसके विपरीत ईश्वर के सन्सर्ग में आने की बात कुछ और ही होती है। ईश्वर पर विश्वास हृदय एवं आत्मा की अतीव गहराइयों में उतर जाता है और मानव को ऐसा चरित्र-बल प्रदान करता है जो कहीं और से अर्जित नहीं किया जा सकता ।

वास्तविक एकेश्वरवादिता यह है कि मनुष्य स्वेच्छापूर्वक अपने-आपको ईश्वर के समक्ष समर्पित कर दे। अपनी इच्छाओं का दास बनकर न रहे। अपने-आपको ईश्वरीय इच्छाओं के अनुरूप बनाए रखे। न जातीय और न राष्ट्रीय भावना उसकी दृष्टि को संकुचित कर सके और न दुनिया की कोई और चीज़ उसके लिए किसी अनुचित पक्षपात का कारण बन सके। एकेश्वरवादी व्यक्ति की केवल उपासना एवं वन्दना ही ईश्वर के लिए नहीं होती, उसका तो जीना-मरना सभी कुछ ईश्वर के लिए होता है। वह मानवता की सेवा करता है तो मानवता को आराध्य मानकर नहीं, बल्कि इसलिए करता है कि ईश्वर ने यह उसका कर्त्तव्य ठहराया है।

क़ुरआन में है–

"कह दो मेरी नमाज़ और मेरी क़ुरबानी, मेरा जीना और मेरा मरना सब अल्लाह के लिए है, जो सारे संसार का 'रब' है।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-162)

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा है–

"उस व्यक्ति ने अपने ईमान को पूर्ण कर लिया जिसने किसी से प्रेम किया तो ईश्वर के लिए, वैर रखा तो ईश्वर के लिए, दिया तो ईश्वर के लिए, रोका तो ईश्वर के लिए।"

(हदीस : अहमद, तिरमिज़ी, हाकिम)

सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से एकेश्वरवाद का प्रभाव

एकेश्वरवाद का प्रभाव समाज पर अत्यन्त व्यापक होता है। 'समस्त मानव-जाति एक समान है' की धारणा के बिना समाज में वास्तविक और स्थायी रूप से न्याय की स्थापना असम्भव है और यह धारणा तभी अस्तित्व में आकर सुदृढ़ हो सकती है जब मुनष्य एक ईश्वर का अनुयायी होकर अपने मध्य के सभी भेदभाव समाप्त कर दे अर्थात् एकेश्वरवाद के आधार पर जब तक संसार के सारे मानवों को एकता के सूत्र में जोड़ा न जाएगा तब तक समता का भाव पैदा नहीं हो सकता। इसी प्रकार संसार की विभिन्न जातियों और विभिन्न देशों को समता एवं एकता के सूत्र में जोड़ा नहीं जा सकता, जब तक कि उनके मन एवं मस्तिष्क में यह बात न बिठाई जाए कि उन सबका ईश्वर एक है। यह ईश्वर का नाता ऐसा है जिससे बढ़कर घनिष्ठ और सुदृढ़ नाता नहीं हो सकता। यह नाता सभी को अपना बना देता है। अपनों से लड़ना और उनके हितों की उपेक्षा करना किसी तरह भी उचित नहीं। ईश्वर के बारे में यह धारणा नहीं बनाई जा सकती कि वह कभी भी यह पसन्द कर सकता है कि उसके सेवक परस्पर लड़ें और एक-दूसरे के साथ अन्याय और छल-कपट की नीति अपनाएँ। उन्हें तो परस्पर एक-दूसरे का हितैषी होना चाहिए। बर्ट्रेण्ड रसल (Bertrand Russell 1872-1970 ई॰) ने बड़े पते की बात लिखी है–

> "हमारे युग में जो चीज़ सामाजिक सम्पर्कों को राष्ट्रीय सीमाओं से आगे बढ़ाने में बाधक है वह राष्ट्रवाद (Nationalism) है। अतः राष्ट्रवाद मानव-जाति के विनाश के लिए सबसे बड़ी शक्ति है। (कितनी विचित्र बात है) प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि दूसरे देशों का राष्ट्रवाद बड़ी बुरी चीज़ है, किन्तु उसके अपने देश का राष्ट्रवाद बहुत अच्छा है।"[1]

1. The Hopes for a Changing World-1953

प्रोफ़ेसर अर्नाल्ड जे॰ ट्वानबी (Prof. Arnold J. Toynbee 1889-1975 ई॰) ने तो स्पष्ट शब्दों में लिखा है–

> "मुसलमानों की पारस्परिक भ्रातृत्व की धारणा निश्चय ही पाश्चात्य देश की संकीर्ण नैशनलिज़्म की धारणा से कहीं अच्छी है और यह धारणा वर्तमान युग की माँगें पूरी कर सकती है–हमें कम-से-कम मुसलमानों से इसकी आशा करनी चाहिए कि वे अपने विश्वव्यापी प्रेम एवं बन्धुत्व की धारणा को त्यागकर यूरोप की ऐसी संकुचित दृष्टिवाली धारणा को अपने यहाँ प्रचलित नहीं करेंगे। एक विश्वव्यापी बन्धुत्व की धारणा यूँ तो मानव-कल्याण के लिए सदैव ही आवश्यक है, परन्तु इस एटम के युग में इसका महत्त्व और इसकी आवश्यकता और भी बढ़ जाती है।"[1]

इस्लामी दृष्टिकोण से एकेश्वरवाद मात्र यह नहीं है कि हम ईश्वर की केवल सत्ता को स्वीकार करके चुप हो रहें और चारित्रिक एवं व्यावहारिक क्षेत्र में ईश्वर और उसकी शिक्षा को विलग रखें। इस्लाम में ईश्वर मात्र ज्ञान-ध्यान की चीज़ नहीं है, बल्कि वह हमारे सम्पूर्ण जीवन को व्याप्त है। जीवन के किसी क्षेत्र में भी वह हमारा साथ नहीं छोड़ता। प्रत्येक विषय में वह हमारा पथ-प्रदर्शक है। व्यक्तिगत जीवन हो या पारिवारिक या सामाजिक जीवन, या जीवन का आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र हो, कहीं भी उसके आदेशों का उल्लंघन हितकर नहीं हो सकता। किसी मामले में भी उसके आदेशों को तोड़कर हम उसके प्रिय भक्त नहीं बन सकते। उसका दिया हुआ धर्म-पथ एकांगी नहीं हो सकता। जब ईश्वर पूर्ण है, तो उसकी शिक्षा भी पूर्ण होगी। हमें ईश्वर को अपने सम्पूर्ण जीवन में ग्रहण करना है। हमें ईश्वर को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार करना है।

रही यह बात कि ईश्वर के दिए हुए आदेश कहाँ हैं? हमें उनका ज्ञान कहाँ से मिल सकता है? हमने पहले भी संकेत किया है कि इस प्रश्न का उत्तर हमें पैग़म्बरों, नबियों और रसूलों का इतिहास देता है। नबियों के पास

1. The World and the West, p. 30-31

ईश्वर के आदेश अवतरित (Revealed) हुए। ईश्वर ने दुनिया में अपने रसूल और पैग़म्बर इसी लिए भेजे कि वे लोगों को ईश्वर के आदेश बताएँ। वे लोगों को ईश्वर का ज्ञान भी दें और यह भी बताएँ कि ईश्वर उनसे क्या चाहता है, उसे किस प्रकार का जीवन प्रिय है और क्या चीज़ उसे अप्रिय है। यह कैसे सम्भव है कि ईश्वर मानव से केवल पूजा-पाठ और वन्दना के कारण प्रसन्न होता हो, उसे इससे कोई मतलब न हो कि मानव का चरित्र कैसा है और उसके जीवन के नियम और क़ानून किस प्रकार के हैं! वह लोगों को भटकने के लिए यूँ ही छोड़ दे, उन्हें कोई गाइड लाइन न दे, यह बात समझ में आने की नहीं है। फिर जब रसूलों ने बताया है कि ईश्वर ने उन्हें लोगों के मार्गदर्शन के लिए नियुक्त किया है और उनके पास अपना सन्देश भेजा है तो फिर उनकी यह बात हमें अजीब क्यों लगती है? ईश्वर लोगों को भटकने के लिए छोड़ देता, आश्चर्य की बात तो यह होती, न कि यह बात कि वह लोगों के मार्गदर्शन (Guidance) की पूरी व्यवस्था करता आ रहा है। नबी विभिन्न देशों और युगों में हुए हैं और उन्होंने मानव को सत्य मार्ग दिखाया है। नबियों के सिलसिले की अन्तिम कड़ी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हैं। मुहम्मद (सल्ल॰) ने मार्गदर्शन का वही कार्य किया है जो पिछले नबियों ने अपने-अपने युग में किया था। मुहम्मद (सल्ल॰) ने उसी एक ईश्वर की ओर लोगों को बुलाया जिसकी ओर पहले नबियों ने लोगों को आमन्त्रित किया था। मानव के लिए सत्य-मार्ग क्या है? जीवन की कौन-सी प्रणाली ईश्वर को पसन्द है? दैनिक जीवन के सच्चे सिद्धान्त और नियम क्या हैं? मानव अपने व्यक्तिगत और सामूहिक एवं सामाजिक जीवन को किस प्रकार सुसंगठित करे? ये सब जानने के लिए हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के लाए हुए ईश्वरीय ग्रन्थ क़ुरआन और आपकी शिक्षाओं का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि आज मार्गदर्शन का विश्वसनीय, प्रमाणिक एवं पूर्ण साधन यही है। इस साधन से फ़ायदा उठाकर आदमी उस सत्य को पा लेगा जो वास्तव में सत्य है और जिसे पिछले सभी पैग़म्बरों ने संसार के समक्ष प्रस्तुत किया था। क़ुरआन कहता है—

"तुम्हारे पास ईश्वर की ओर से प्रकाश और स्पष्ट ग्रन्थ आ गया

है, उसके द्वारा ईश्वर उस व्यक्ति को जो उसकी ख़ुशी पर चला, सलामती की राहें दिखाता है और अपनी अनुमति से ऐसे लोगों को अन्धेरों से निकालकर उजाले की ओर ले आता है, और उन्हें सीधा मार्ग दिखाता है।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-15,16)

वह जगत् में भासित है

किसी ने कितना सही कहा है—

"हे परमात्मा! जब मैं पशुओं की पुकार, वृक्षों का कम्पन, जल की कलकल ध्वनि, चिड़ियों की कूक, वायु की सरसराहट या बिजली की कड़क सुनता हूँ तो मुझे भासित होता है कि वे तेरी एकता के साक्ष्य हैं और इस बात के प्रमाण हैं कि तेरे समान कोई वस्तु नहीं।"

क़ुरआन में है—

"निश्चय ही ईश्वर दाने और गुठली को फाड़ निकालता है, सजीव को निर्जीव से निकालता है और निर्जीव को सजीव से निकालता है। यह है ईश्वर, फिर तुम कहाँ से उल्टे-भटके चले जा रहे हो?"
(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-95)

"रात के पर्दे को फाड़कर वही सुबह निकालता है, और उसी ने रात को आराम के लिए बनाया और सूर्य और चन्द्रमा को (समय के) हिसाब का साधन ठहराया। यह बड़े शक्तिशाली सर्वज्ञ का ठहराया हुआ परिमाण है।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-96)

"और वही है जिसने आकाश से पानी बरसाया, फिर हमने उसके द्वारा हर प्रकार की वनस्पति उगाई; फिर उससे हमने हरी-भरी पत्तियाँ निकालीं और तने विकसित किए, जिससे हम तले-ऊपर चढ़े हुए दाने निकालते हैं—और खजूर के गाभे से झुके पड़ते गुच्छे भी—और अंगूर, ज़ैतून और अनार के बाग़ लगाए, जो एक-दूसरे से मिलते-जुलते भी हैं और एक-दूसरे से भिन्न भी होते हैं। उसके फल को देखो, जब वह फलता है, और उसके पकने को भी देखो! निस्सन्देह इन चीज़ों में उन लोगों के लिए निशानियाँ (संकेत) हैं जो मानते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-99)

"और ईश्वर ही तो है जो हवाओं को भेजता है फिर वे बादल

उठाती हैं फिर हम उसे एक निर्जीव भू-भाग की ओर ले चलते हैं और उससे धरती को उसके मुर्दा हो जाने के पश्चात् ज़िन्दा कर देते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-35 फ़ातिर, आयत-9)

"निस्सन्देह ईश्वर ही आकाशों और धरती को रोके हुए है कि टल न जाएँ, और यदि वे टल जाएँ तो उसके पश्चात् कोई भी नहीं जो उन्हें थाम सके।" (क़ुरआन, सूरा-35 फ़ातिर, आयत-41)

"क्या ये लोग धरती में चले-फिरे नहीं कि देखते कि उन लोगों का कैसा परिणाम हुआ जो इनसे पहले गुज़रे हैं? हालाँकि वे शक्ति में इनसे कहीं बढ़-चढ़कर थे। ईश्वर ऐसा नहीं कि आकाशों में कोई चीज़ उसे मात कर सके और न धरती ही में (ऐसा कोई है) निस्सन्देह वह सर्वज्ञ, सामर्थ्यवान है।"

(क़ुरआन, सूरा-35 फ़ातिर, आयत-44)

"और ईश्वर निस्पृह है और तुम मुहताज हो। और यदि तुम मुँह मोड़ोगे तो वह तुम्हारी जगह अन्य लोगों को ले आएगा और वे तुम्हारे जैसे न होंगे।" (क़ुरआन, सूरा-47 मुहम्मद, आयत-38)

■■

कुछ अहम किताबें

औरत और इस्लाम	मौलाना सय्यद जलालुद्दीन उमरी
औरत और प्राकृतिक नियम	मौलाना सय्यद अबुल-आला मौदूदी
आदाबे-ज़िन्दगी	मौलाना मुहम्मद यूसुफ़ इस्लाही
ईसा मसीह और मरयम क़ुरआन के दर्पण में	मुहम्मद ज़ैनुलआबिदीन मंसूरी
इस्लाम में औरत का स्थान और मुस्लिम पर्सनल लॉ	प्रो॰ उमर हयात ख़ाँ ग़ौरी
इस्लाम में पाकी और सफ़ाई	नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
इस्लाम में पति-पत्नी के अधिकार	मौलाना सय्यद अबुल-आला मौदूदी
इस्लामी शरीअत	माइल ख़ैराबादी
क्या परदा मुल्क की तरक़्क़ी में रुकावट है	सैयदा परवीन रिज़वी
दीनियात	मौलाना सय्यद अबुल-आला मौदूदी
नारी और इस्लाम	मक़बूल अहमद फ़लाही
नमाज़	मौलाना नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
नेकियों का गुलदस्ता	साजिदा फ़रज़ाना सादिक़
प्यारी माँ के नाम इस्लामी सन्देश	मौलाना नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
प्यार के चिराग़ (कहानियाँ)	अबरार मोहसिन
परदा	मौलाना सय्यद अबुल-आला मौदूदी
मीरास का बँटवारा और उसके हक़दार	मिर्ज़ा सुबहान बेग
मुस्लिम औरतों की ज़िम्मेदारियाँ	मौलाना सय्यद जलालुद्दीन उमरी
मुस्लिम लड़कियों की शिक्षा समस्या...	उमर अफ़ज़ल
रमज़ान कैसे गुज़ारें ?	ख़ुर्रम मुराद
रोज़ा और उसका अस्ली मक़सद	मौलाना सय्यद अबुल-आला मौदूदी
लिंगभेद और इस्लाम	डॉ॰ फ़ज़्लुर्रहमान फ़रीदी
स्त्री और पुरुष में समानता की वास्तविकता	बुशरा सादिक़ा
सहाबियात के हालात	माइल ख़ैराबादी
प्यारे नबी (सल्ल॰) की पाक बीवियाँ	तालिब हाशिमी
आदाबे ज़िन्दगी	मौलाना मुहम्मद यूसुफ़ इस्लाही
अच्छे लोग	इरफ़ान ख़लीली

अन्धा इनसाफ़ (बच्चों के लिए)	मतीन तारिक़ बाग़पती
अल-असमाउलहुस्ना (काव्य)	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
अल्लाह ही के होकर रहो	ख़ुर्रम मुराद
इक़बाल की कविताएँ (बच्चों के लिए)	सनाउल्लाह सुमन
ईदुल-फ़ित्र किसके लिए?	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
इबादत	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
ईमान की कसौटी	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
इस्लाम आपसे क्या चाहता है?	मौलाना सय्यद हामिद अली
इस्लाम की बुनियादी बातें	मौलाना अब्दुल हई
इस्लाम जिससे मुझे प्यार है	अब्दुल्लाह अडियार
इस्लाम में पाकी और सफ़ाई	नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
इस्लामी शरीअत	माइल ख़ैराबादी
हदीस प्रभा (सफ़ीना-ए-नजात)	मौलाना जलील अहसन नदवी
क़ुरआन कैसे पढ़ें?	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
क़ुरआन मजीद की शिक्षाएँ	मौलाना नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
चालीस हदीसें	मौलाना सय्यद हामिद अली
ज़बान का ज़ख़्म	माइल ख़ैराबादी
ज़बान की हिफ़ाज़त	बिन्तुल इस्लाम
जीवनी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰)	मुहम्मद इनायतुल्लाह सुब्हानी
दीनियात	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
दस कहानियाँ एक उद्देश्य	डॉ॰ कौसर यज़दानी
निकाह का ख़ुतबा	मौलाना सय्यद हामिद अली
नमाज़	मौलाना नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
नमाज़ (पाकेट साइज़)	मौलाना नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
नमाज़ें बे-असर क्यों हो गईं?	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
नबी करीम (सल्ल॰) की दुआएँ	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
नबी करीम (सल्ल॰) की दुआएँ (पाकेट साइज़)	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
प्यारी माँ के नाम इस्लामी सन्देश	मौलाना नसीम ग़ाज़ी फ़लाही